शास्त्रजीको शुद्ध पने और शुद्ध स्थान पर रखो।

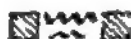
ॐ अर्ह नमः



# आत्म-मन्थन

* संपादक और विवेचक *

मुनि श्री चम्पक सागरजी महाराज साहब (सत्यानन्द)




– प्रकाशक –

श्री जैन सदाचार साहित्य समिति

(खामग्रोल) जुनागढ (गुजरात)

प्रथमावृत्ति। वीर संवत ४९२

प्रत १००० वि संवत २०२२

卐

मूल्य रुपये २-५० पैसा

प्रदीप प्रेस–जूनागढ

— प्राप्ति स्थान —
श्री जैन सदाचार साहित्य समिति
दोशी ब्रधर्स
मनसुखलाल माणेकचंद दोशी (रामपुरावाला)
शाडीरापा (चारा बाजार)
जुनागढ (गुजरात)

# 卐 सद्भावना 卐

जस दहि बलोवत, पावत नवनीत सार।
तस आत्म विचारसे, पावत सत्यानन्द सार ॥ १ ॥

॥ ॐ ॥

श्रीमान गणिवय मानसागरजी महाराज साहेब गुरुभ्यो नमः



महाराज साहेब सदा जयतु

श्री मान् गणिवय मानसागरजी

म पं स ण

# गद्यमे स्वस्तिक प्रबन्ध

चरणकिङ्कर — चम्पकसागर

ॐ अर्हं नमः

# — दो शब्द —



वाचक महाशयसे विनम्र निवेदन करता हूं कि मैं न लेखक हूं न वक्ता हूं न कवि हूं न विद्वान हूं किन्तु एक धर्मके पुजारी तो जरुर हूं सो भी कुछ वर्षोंसे क्षयोपशमसे आत्म-संबंधी मुझे विचार आया करते और शास्त्रोंका अध्ययन आत्म-चिन्तवन किये करता रहा हूं। मुझे हठात् एकदम विचार आया कि कुछ स्व-पर कल्याणके लिये लिखूं और कुछ साहित्य पढूं तो इस पुरुषार्थमें समभाव-समाधिरूप कुछ लाभ प्राप्त होगा। और आत्म मंथन ज्यादा होगा। दूसरे लोग भी पढेंगे तो उनोंको शुभ भाव और आत्म शुद्धिकी भावना रहेगी। इस आशयसे प्रस्तुत किताबका आलेखन करनेमें कुछ साहित्यका संपादन भी किया है। यह किताब लिखनेमें जो कुछ भाषा-दोष रहा है सो मेरा लिखनेका आदरा कम होनेसे रहा है। वह वाचक लोग सुधार कर वांचे। जिस जिस महाशयोंने किताबकी शुद्धि करनेमें मुझे सहायता दी है उस महानुभावोंका मैं ऋणी हूं। इस किताबमें जिस जिस शास्त्रका सहारा लिया गया है। सो उनका नाम भी दे देता हूं। श्री ज्ञानार्णव। श्री शान्तसुधारस काव्य। रत्न करंड श्रावकाचार। सिंदूर प्रकरण। शास्त्र संग्रह। व्याख्यान संग्रहादि ग्रन्थोंका अध्ययन करते जिन जिन विषयमें जिसकी जितनी जरुर लगी उसका संपादन किया गया है। सो भी उपकारी है। श्री बोरो प्रिंटरोंने भी छपाइके काममें सुविहिता दी सो प्रशंसनीय है।

इस किताबका नाम "आत्म मंथन" रक्खा है सो आत्म-

विषयका अनुसंधान ही मुख्य है। इसीसे नामकी सार्थकता लगे बिना नहीं रहेगी।

इस किताबमें जो विषयानुक्रम रखा है? उसका निर्णय पाठक महाशय पर ही छोड़ता हूँ। और जो कुछ त्रुटी रही होवे तो पाठक लोगोंसे क्षमा चाहता हूं।

छोटी बड़ी भूल जितने सज्जन लेना सुधार।
बालक बुद्धि जानिकर सज्जन करे उपकार ॥१॥

संवत २०२२ के मागशर वदी १२ रविवार ॥

—मुनि धर्मरत्न गर (राजानंद)



नोट-ये दोनों सम्प्रदाय परस्पर एक दूसरेके विधि विधान क्रिया कांडसे ज्ञाता बनें। इस आशयसे विधि विधान संपादन किया है। और अपने अपने सम्प्रदाय विधि विधान करते रहें आराधक बनें। यही मेरी अभिलाषा है।

ॐ ह्रीं नमः

# विषयानुक्रम

स्व परम पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनन्दसागर
सूरीश्वरजी महाराज साहेबके शिष्य रत्नोंहुदो जैन साहित्य प्रचारक
स्व पन्यास श्रीमान मानसागरजी महाराज साहेब ।



जन्म– सं १९४७ फा शु १५ आमनगर
दीक्षा – सं १९६६ अषाढ सुदी १२ सूरत गुजरात
गणिपद– सं १९९७ माघवार शुदी १ वढवाणी उ गुजरात
स्वर्गवास – सं २०१० महा सुद ५ भोयणाम ।

# शुद्धि पत्रक

इस शुद्धि पत्रकके अनुसार किताब शुद्ध कर कर पढ़ें।

| पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १० | तिसरा | तिसरा | ५ | ८ | ओोंचे | ओंचे |
| ७ | सातवा | सातवी | ५ | ६ | स्यातवाद | स्याद्वाद |
| ६ | दु खोले | दु खोले | ५ | २१ | सदगुरु । | सदगुरु- |
| १४ | विभु | विभू | ५ | २३ | परोभवि | परिभवि |
| १६ | प्याउ | प्याउ | ५ | २३ | अनजन । | अनजन- |
| १६ | कद | कद | ६ | ३ | भावे | भावे |
| ५ | मुजको | मुजके | ६ | २२ | सपयके | सपय की |
| ११ | रागद्वष | रागद्वेष | ६ | ४ | अपूं | अपू |
| १२ | गुण | गुण | ७ | ५ | हरी | हरि |
| १ | विकलता | विकलता | ८ | ११ | हो | हो |
| १ | मुद्दे | मुद्दे | ८ | २० | मार्ग | मार्ग, |
| २ | मुद्दे | मुद्दे | ६ | ६ | करहन | करहन |
| ७ | बहोर । | बहोर- | ६ | ६ | पहुते | पहुते |
| ८ | रेवहर | रेवहर | ६ | ७ | भजन | भजन |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ९ | १३ | घरें | घरें |
| ९ | १४ | हों | हो |
| ९ | १४ | भजन | भजन |
| ९ | २१ | छालियो | छलियो |
| १० | ७ | माह | मह |
| १० | ९ | नम | नमका |
| १० | ११ | करणे | करने |
| १० | १३ | सा | सो |
| १० | १३ | क्षणीक | क्षणिक |
| १० | १४ | क | के |
| १० | १७ | है | है |
| १० | २१ | कोई | को |
| १० | २३ | मना | माना |
| ११ | १ | जितना | जितने |
| ११ | १ | उतना | उतने |
| ११ | ६ | जितना | जितने |
| ११ | ४ | उतना | उतने |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ११ | ५ | जितना | जितने |
| ११ | १३ | लेश्मन | लेश्म |
| ११ | १४ | लेश्मन | लेश्म |
| ११ | १५ | पुद्गमें | पुद्गलमें |
| ११ | १७ | अपनमें | अपनेमें |
| १२ | ४ | समुद्रमें | समुद्रमें |
| १२ | ५ | समज | समझ |
| १२ | १७ | काइ | काई |
| १२ | २२ | समाम | सम |
| १३ | २ | श्वादिको | स्वादिको |
| १३ | १४ | आलबन | अवलबन |
| १३ | १६ | आत्माका | आत्माको |
| १३ | १८ | क्या | किया |
| १३ | २३ | ड | है |
| १४ | २ | रखो तो | रक्खो तो |
| १४ | ६ | विनश्वर | विनस्वर |
| १४ | १६ | जीवोंके | जीवोंक |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १४ | १७ | रागमां | रागमें | १७ | २० | ह | है |
| १४ | २२ | हलका, | हलका | १७ | २१ | आता | आती |
| १५ | १ | हृदय | हृदय | १८ | १ | दो प्रकारका | दो प्रकारके |
| १५ | ४ | धारक | धारक | १८ | ३ | साधु | साधु |
| १५ | ८ | भागमरूप | आगमरूप | १८ | ७ | व्यवहारका | व्यवहारके |
| १५ | ११ | कमर्में | कर्में | १ | ८ | की | कि |
| १५ | ११ | रुप | रूप | १८ | ९ | उपयोगो | उपयोगी |
| १५ | १२ | ओते | ओत | १८ | ९ | जीवका | औ जीवका |
| १५ | १३ | उनके | उन | १८ | १० | व | और |
| १५ | १६ | बोध | बोध | १८ | १० | व | और |
| १५ | १६ | इत्यत – | इत्यत, | १८ | १२ | फिरभो | फिरभी |
| १५ | २१ | किही | को ही | १८ | १२ | कीर्ति | कीर्ति |
| १६ | २ | मनतवार | मनतवार | १८ | १२ | व | और |
| १६ | ३ | शुद्ध | शुद्ध | १८ | १८ | व | और |
| १७ | ६ | सामान्यता | सामान्यता | १८ | १८ | आत्माके | आत्माका |
| १७ | ६ | मो | भी | १८ | १८ | धरे | पर |
| १७ | १७ | पकानां | पकवानों | १८ | १९ | व | और |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १८ | १९ | वप | वध | २० | ७ | सहकारा | सहकारी |
| १८ | २४ | प्रकारका | प्रकारके | २० | १७ | कथन | केवल |
| १८ | २५ | व | और | २० | २१ | अधाथ | अधर्म |
| १८ | २७ | बांधकर | बांधकर | २० | २४ | करणे | करते |
| १९ | ३ | मानाय | मानव | २० | २४ | है | है |
| १९ | ३ | व | और | २१ | १ | तोन | तीन |
| १९ | ४ | पेर | पर | २१ | १ | मेद | भेद |
| १९ | ५ | सथम | सयम | २१ | ७ | गीता | गिता |
| १९ | ६ | ४ है | ४ प्रकार है | २१ | २३ | कोर्ति | कीर्ति |
| १९ | १० | प्रिति | प्रीति | २१ | २५ | सेर। | सेर |
| १९ | ११ | कायसे | कार्योंसे | २२ | १ | वासि | वासी |
| १९ | १४ | साधर्मो | साधर्मी | २२ | १ | कोर्ति | कीर्ति |
| १९ | १५ | व | और | २२ | ६ | अपना | अपना ही |
| १९ | १६ | व | तथा | २२ | ११ | केवल्ल | केवल |
| १९ | १८ | प्रकारका | प्रकारके | २२ | ११ | मोक्षायी | मोक्षार्थी |
| १९ | १९ | व | और | २२ | २४ | हम | इस |
| २० | १ | प्रयत्त | प्रयत्न | २३ | ४ | गया | गया |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| २३ | १२ | स्वोर | स्थिर | २५ | २० | छें | छ |
| २३ | १२ | वियका | विपके | २५ | २३ | पोने | पीने |
| २३ | १४ | बेठालि | भेटालि | २५ | २३ | कहतें है | कहते है |
| २४ | ३ | भत | भूत | २५ | २३ | टेपरादि | लेपरादि |
| २४ | ४ | कोलसा | कौनसा | २६ | २ | करणे | कारने |
| २४ | ४ | देनेष | देनेंदे | २६ | ४ | वीरतकमें | [illegible] |
| २४ | ४ | करैगा | करेगा | २६ | ६ | वास्तु | वस्तु |
| २४ | १ | बवली | बावली | २६ | ६ | कूछ | कुछ |
| २४ | २४ | गोंच | गोत्र | २६ | ९ | प्रमाग | प्रमाण |
| २५ | १ | जलाजलि | तिलांजलि | २६ | १० | गार्मोकी | गर्मोकी |
| २५ | ८ | ग्लाध्य | श्लाघ्य | २६ | १ | रतमें | ऋतुमें |
| २५ | १२ | मनकी | मलकै | २६ | १८ | करणा | करना |
| २५ | | धोर्ते | धोत | २७ | ७ | केवल | केवल |
| २५ | १३ | लोकोंके | लोगोंके | २७ | ८ | एसो | एसी |
| २५ | १५ | मीलजात | मिलजात | २७ | ८ | उत्म | उत्तम |
| २५ | १७ | विचारमे | विचारेंगे | २७ | ९ | कना | करना |
| २५ | २० | छें | छ | २७ | ९ | इससोए | इसलिए |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| २७ | १० | आलस्य | आलस्यास्य | ३ | ६ | जीवो | जीवों |
| २७ | १९ | है | है | ३० | ६ | पें | पर |
| २७ | २१ | रस | रसभर | ३० | ७ | हों | हो |
| २७ | २५ | है | है | ३० | ९ | करणी | करनी |
| २८ | १२ | जितवर | जीतवर | ३० | ११ | भिन्नाभिन्न | भिन्नभिन्न |
| २८ | १४ | मुनिराजोको | मुनिराजोंको | ३० | १२ | रम्यारम्ये। | रम्यारम्यये |
| २८ | १७ | जाचित | जागत | ३० | १३ | जुदे जुदे | जुदे जुदे |
| २८ | १७ | है | है | ३० | १५ | लोक | लोग |
| २८ | २० | किंचित | निचित | ३० | १५ | उनके | जनके |
| २८ | २० | हो | हों | ३० | २१ | और | और |
| २९ | ५ | करके | करके | ३० | २२ | आनेवाली है | आनेवाली है |
| २९ | ७ | है | है | ३१ | ६ | विजयजी | विजयजी |
| २९ | १२ | स्वाध्या | स्वाध्याय | ३१ | ११ | वस्तु | वस्तु |
| २९ | १४ | है | है | ३१ | १६ | विनाशीक | विनाशक |
| २९ | १४ | तत्वको | तत्वके | ३१ | १८ | विचार | विचार |
| २९ | १४ | अभ्याममें | अभ्यासमें | ३१ | २० | वरदांन | वरदान |
| ३० | ३ | वाले | वाने | ३१ | २२ | फाळके | कालके |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ३२ | ७ | हु | है | ४१ | २० | हो नहीं | हो हो नहीं |
| ३२ | ११ | भवि | भवि (भव्य) | ४४ | २ | अ यका) | (अ यका) |
| ३२ | १६ | पर्यायोंको | पर्यायोंको | ४४ | २ | वहै | यत है |
| ३२ | १७ | भटकहो | भटकाहो | ४८ | १ | हिसाक | हिसाके |
| ३२ | १९ | हेमात | हिमात | ४८ | ३ | लाभ | प्राप्त |
| ३२ | १९ | परमात | परमात | ५२ | २ | पाछे | पीछे |
| ३२ | २१ | पौत्रिक | पौत्रिक | ५२ | १३ | पार | और |
| ३३ | ७ | छूटनेकी | छूटनेकी | ५४ | २२ | ॥१॥ | ॥६॥ |
| ३३ | १५ | स्वरूपका | स्वरूपके | ५५ | ११ | परमाशक | परकाशक |
| ३४ | १३ | काइ | कोई | ५५ | २२ | प्रक | एक |
| ३४ | २४ | पर पदार्थमें | परपदार्थमें | ५७ | १३ | वरद | गद |
| ३५ | २ | सयतया | सवतया | ५७ | १५ | प्रराध | प्रधार |
| ३८ | ६ | प्रात्माक | आत्माके | ५७ | १८ | सलिलसी | सलिल सी |
| ४० | ५ | हुइ | हुई | ५७ | १८ | करी | करी |
| ४० | ११ | हुया | हुआ | ५७ | १९ | विस्तरो | विस्तरों |
| ४० | १९ | निजहित | नि हिते | ५- | २ | निधार | निरधार |
| ४१ | १९ | [illegible] | कर्म | ५८ | ६ | उयोत | उद्योत |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ५८ | १२ | एव | लेऊ |
| ५८ | १७ | पूर | पूग |
| ५८ | २१ | फल | फूल |
| ५८ | २१ | फलावती | फलावती |
| ५९ | ५ | घाटी | घाटि |
| ५९ | १४ | चोवेह | चौवेह |
| ५९ | १५ | नलिय | नगिय |
| ५९ | १६ | सूतरलख | सब पूरे |
| ५९ | १६ | गरह | ठारह |
| ५९ | १८ | अभग | अभलन |
| ५९ | २० | चोपय | चोपय |
| ५९ | २० | मर | घर |
| ५९ | २१ | मर | घर |
| ५९ | २२ | धैरी | चोरी (चोरी) |
| ६१ | ८ | | भस्म |
| ६१ | ११ | घर | घर |
| ६२ | १२ | ढाना | ठाना |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ६२ | १९ | तिरावन | तिरानब |
| ६३ | २ | साठे | साठे |
| ६३ | २ | माये | गाये |
| ६४ | ८ | नोठ – | नोट – |
| ६५ | ९ | उनसबी | उनसभी |
| ६७ | ६ | ममण | क्रमण |
| ६७ | ६ | कर्मके | कमके |
| ६७ | ११ | सहित | सहित |
| ६८ | १४ | कस | कस |
| ६९ | १६ | अ । | अस |
| ६९ | २६ | छाना | छानी |
| ६९ | २६ | दोष | दोष |
| ७१ | ९ | इम | इस |
| ७२ | ४ | नाठ | नष्ट |
| ७३ | १ | घ गायो | घटनायों |
| ७३ | ८ | घनिक | धनिक |
| ७३ | ११ | करें | करें तो |

| पष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध | पष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ७३ | १६ | का | की | ८२ | १६ | स्वादमे | स्यादसे |
| ७३ | १८ | प्रार | घोर | ८२ | २४ | उत | उते |
| ७३ | २३ | मनुपदेन | सनुपदेन | ८३ | १० | ग्हता | रहता |
| ७३ | २४ | परकल्याणको | परकल्याणके | ८३ | १७ | प्रावरण | प्रावरण |
| ७३ | २५ | प्रेतोक | प्रेतोक | ८४ | १६ | पृथक | एतक |
| ७४ | ६ | कि | की | ८५ | ३ | मूर्ति | मूर्ति |
| ७४ | २४ | भल | भूत | ८६ | ६ | आत्मामो | आत्मामें |
| ७६ | ८ | कोन | सोते | ८८ | ८ | दू रत्व | दूरत्व |
| ७६ | २५ | जसे | जसे | ८८ | १३ | पाप | पाप |
| ७७ | २६ | वयकर | वक्कर | ८८ | १६ | करता | करना |
| ७८ | १ | लौकि क | अलौकिक | ८८ | २५ | मथ | मथ |
| ७८ | ४ | बारि | बारा | ९० | १८ | रागाने | रागीने |
| ८१ | ५ | ग्हा | रहा | ९० | २२ | घार | घोर |
| ८१ | ७ | तर | तरे | ९० | २६ | मिलेगा | मिलेगी |
| ८१ | ७ | मीतर | भीतर | ९१ | २१ | मगरवा | मगरवी |
| ८१ | ८ | होती | होती | ९२ | १७ | पहुताकर | पहलाकर |
| ८२ | ३ | उम | उस | ९२ | २१ | पालकामें | पालकीमें |
| ८२ | १३ | किसी | किसी | ९२ | २५ | म | म |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ९४ | ८ | उमका | उसका | १०० | १० | भो | भी |
| ९४ | ९ | ग्ला | रखा | १०० | २३ | आपकं | आपको |
| ९५ | १ | ०ो | भो | १०३ | १८ | अर्वविह | अउविह |
| ९५ | २ | बोसला | बोलता | १०४ | ६ | अभुद्दिग्रो | अब्भुट्ठियो |
| ९५ | २३ | भो | भो | १०४ | ८ | अपत्तिम | अपत्तिम, |
| ९५ | २५ | अपन | अपनी | १०४ | १० | अतरमासाए | अनरभासाए |
| ९५ | २६ | मग्क | करके | १०४ | १६ | बोपक्कमण | बीयक्कमणे |
| ९६ | १ | कारे | करके | १०४ | २० | सक्काभिया | सक्कामिया |
| ९७ | १ | महो | कहो | १०७ | १२ | अप्पडि | अप्पडि |
| ९७ | ४ | किम | किस | १०७ | २१ | सनाउ | सताऊ |
| ९८ | ९ | को | की है | १ ८ | ९ | माधिक | नश्कि |
| ९८ | १२ | मिलताहो | मिलता है | १०९ | १ | चिहठ | चिटठइ |
| ९८ | १४ | हो | हो | १११ | २० | पहोरे | पहोर |
| ९८ | २५ | ता | तो | ११६ | १ | लहत्ति | लहत्ति |
| ९८ | २५ | त । | तब | ११६ | १ | पंछे | पीछे |
| ९९ | ३ | वान | दिन | ११६ | ३ | पाछे | पीछे |
| ९९ | २३ | राजाको | राजाके | ११६ | १० | पाव | पांच |

(पेज ८ से चालु)





## ❋ योगका महत्व ❋

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ १ ॥

अर्थ – यदि कोई आत्मा योगी हो और कर्मकी विचित्रतासे आत्म विचारसे च्युत ॥ अर्थात योगसे भ्रष्ट हो तो भी योगकी अभिलाषावाला होनेसे देवादि की ऋद्धि पाकर पुनः पवित्र एसा बुद्धिशाली और लक्ष्मीवान के कुलमें जन्म पाकर शुद्ध होता है ॥ १ ॥

॥ ॐ अर्ह नम ॥

# — तीर्थ —

आत्मासे नहीं और हि तीरथ
सम रस कुंड अमाप।
स्नान सालें[1] पाप नासे
स्वात्मानन्द लो आप ॥ १ ॥

卐 卐 卐

# — धर्म —

धर्म धर्म सब ही कहे
धर्म नहीं बताए चीज।
जड़ चेतनका भेद लिया
वही धर्मका बीज ॥ २ ॥

卐 卐 卐

# — कर्म —

कर्म तीन प्रकारके
द्रव्य भाव और नो।
आत्मा चित आपका
रहे न कर्म एक सो ॥ ३ ॥

— चम्पक सागर

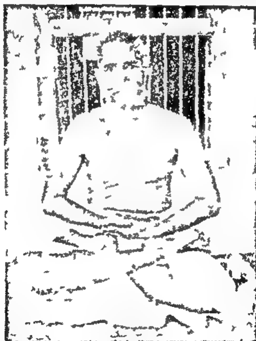
[1] वासा छवामम

॥ ॐ ॥

परम पूज्य आगमोद्धारक आचार्य देव श्री आनन्द सागरजी सूरीश्वरजी म सा शिष्य रत्न गणिवर्य मान सागरजी म सा के शिष्य मुनिराज श्री

# श्री चम्पक सागरजी महाराज साहेब

(सत्यानन्द)



| जन्म | बडी दीक्षा |
|---|---|
| स १९६७ जेष्ठ मास | २०५ अषाढ शु |
| अगवरी | साबरमती । |

ॐ अर्हं नमः

# प्रार्थना

वंदन हो वंदन हो विश्व – विभूतिको वंदन हो – (चाल)
पहेला वंदन देव गुरुको दुसरा वंदन मात पिताको
तिसरा वंदन विद्यागुरुको, चौथा वंदन गुणग्राहिको वं –१
पंचम वंदन अधिक गुणीको, छट्ठा वंदन समगुणीको
सातवा वंदन सब जीवोंको आठवा वंदन जन्मभूमिको वं –२
चंपकसागर कहे वंदन करता गुण खजाना अंतर भरता
दुःखोसे हम कभी न डरते ध्येय सदा हम मनमें धरते वं –३

## आत्म भावना

जय जय भगवन अंतरयामी, करुणा रसका सागर तू
नाथ निरंजन संकट भंजन, तेरे शरणा आया मैं
अज्ञान अंधेरा दूर करनको जगमें सूरज एक ही तू
तेरे बिना मन कहिं न ठहरता स्वीकार अर्ज मेरी विभु –१
मैं शरणागत परमार्थ तू विशेष विशेष मैं क्या कहूं
किस नाम से किस रूप से ध्याऊं तुझे मैं प्रश्न कर
गम पड़ेगा जा [illegible] मैं अंतरयामी मेरा तू
तेरे से न अंतर [illegible] बात मैं सत्य कहूं

## नेमिनाथजी का स्तवन

प्यारो लाग मने व्हालो लागे, गढ गिरनार मने प्यारो लागे (चाल)

नेम प्रभुनु मुखडु जोता, अतरमा थई थई थाय
राजुल रमणि रंग बनीने, आसुडा आवे जराय प्यारो १

विलापनो जाणे विनोद करता, माछु मलकी जाय
नारीना शोषवा नम रहता, मानु कुंभी स्तवाय प्यारो २

धन्य घडीने धन्य दिवस जेना पाव दिवस उजवाय,
धवल पामता राजुल पहोंची, शत गीत जेहना गवाय, प्यारो ३

हरि प्रहने रंग नव भव भाळ्या, सामली सभा हरखाय
नेम राजुल बन्ने अेवयता साथी, ससार-पार पमाय प्यारो ४

द्वि सहस्रने आगणिस साले, अषाढ वदी अग्तिम जणाय
सत्यानद श्री अर्हं जपता, माड बन्ने सामा न थाय प्यारो ५

## ताल ध्वज श्री शातिनाथ जिन स्तवन

राग — जिंदाबाद जिंदाबाद ( मुगले आजम )

भव सागरसे पार उतारो नैया डूबे ना,
मेरी नैया डूबे ना, मेरी नैया डूबे ना
कर कल्याण कर कल्याण, श्री जिनवर मेरा, कर कल्याण (१)

शात सुधारस दर्शन तेरा, नयनकमल ज्युं खदा,
आनद अमीरस भर भर पीता, भावकटोरे खदा
ताल ध्वजमें तु हि बीराजे,
मनोहर मूर्ति तेरी कर कल्याण (२)

शांति जिनेश्वर साहब मेरा शांति नाम सुखकार
१ प्रणव २ माया बीज सहित जे जपते नर अहर्न-
अज्ञान अंधेरा दूर होगा जब,
हायगी मैया पार कर कल्याण (१)

संसार ताप न सहता मुझसे कर करुणा महाराज
मान सरोवर तरंग श्रेणी सम भाव करमा हो आज
समता लाकर प्रभु गुण पाकर,
जीवन हो आबाद कर कल्याण (४)

संपद्सागर प्रभु पाकर, हृदयमें धरु मैं ध्यान
पावन होगा हृदय हमारा, जैसा गुरुगम ज्ञान
भव सागरमें ३ तरणी वाणी,
मुनि ४ महत्ता ५ महान कर कल्याण (५)

---

१ प्रणव=ॐकार २ माया बीज=ह्रींकार ३ तरणी=नाव
४ महत्ता=महिमा ५ महान्=घणा

## श्री लाल ध्वज मंडण सुमितनाथ जिन स्तवन

( राग-दान उलट भरी दीजिये-ए देशी )

लाल ध्वज मंडण प्रभु पंचम जिनवर देवरे,
साचो साहिब तने कहे, हु किम मानु अवर लाल १
सुजमन स्थिर स्वामि थाओ मानु मानु सफर,
अनुभव विना हु किम कहु, आश्रु अधिक सफर लाल २
बहु लोक भटके सदा, विणसद्धा जीव अज्ञानरे,
ज्ञानी विना गुण कोण जाणे,
किम भुलु भान रे लाल

श्रद्धाये विरति आदरी श्रद्धाये भण्यो ज्ञानरे
श्रद्धाये तुज क्षमा तप तपु श्रद्धाये धर्म ध्यानरे तार० ४
मोक्ष मार्ग भले ढूकडो कोण रजळे ममारे,
मळत येहजार मालमा, तालध्वज भग्यो मागर तार० ५
चैत्र शुदी अेकादश्य दीठो गिरिदेव – विमानरे
अन्तरे हर्ष थयो अतिघणो जीहा से क्षिम कहुं मानरे तार० ६
कर्युं चामासु तुज चरणमा, वरस बेहजार सत्त–दशरे,
चपक सागरे सुमति गुण्या थाय सुमतिथ मनवश रे तार० ७

## श्री आत्मभावना पद

देखो भाइ महा विकल संसारी, दुखित अनादि मोह के कारण
रागद्वेष उरधारी देखो भाई (अे टक)
हिंसारंभ करत सुख समजे मृषा बोल चतुराइ ।
परधन हरन समर्थ कहाये, परिग्रह बढ़त बडाइ ॥ देखो भाइ १
वचन राखे काय दृढ राखे मिटे न मन चपलाइ ।
यातहात औरकी और शुभ करणी दुःख दाइ ॥ देखो भाइ २
योगासन करे पवन निराधे, आतम दृष्टि न जागे ।
कथनी कहत महंत कहाये, ममता मूल न त्यागे ॥ देखो भाई ३
आगम वेद सिद्धांत पाठ सुणे हिये आठमद आणे
जाति लाभ कुल बल–तप विद्या प्रभुतारूप बखाणे ॥ देखो भाई ४
जड शु राचे परमपद साधे, आत्मशक्ति न सूझे ।
विनय विवक विचार द्रव्यको, गुण पर्याय न बूझे ॥ देखो भाई ५
जसवाले जस सुणी संतोषे तप वाले तप शोषे
गुणवाला परगुनकु दोष मतवाला मत पोषे ॥ देखो भाई ६

गुरु उपदेश सहज उदयागत मोह विकलता छूटे।
श्रीनय विजय सुजस विलासी, अचल अक्षय निधि लूटे॥ देखो भाइ॥७

कर्ता श्री महामहोपाध्यायजी श्रीमद् यशोविजयजी कृत

## श्री जैनतत्व विष सज्झाय

परमगुरु जैन कहो क्युं होय गुरु उपदेश विना जन मूढा
दर्शन जैन विगोय ॥ परम गुरु ॥ १ ॥
कहत कृपानिधि सम जल झीले, कर्म मल जे धोये, बहीर।
पाप मल अंग न धारे शुद्ध स्वरूप निज जोय ॥ परम गुरु॥२॥
स्याद्वाद पूरण जो जाणे नय गर्भित जस वाचा, गुणपर्याय
द्रव्य सो जाणे सोही जैन है साचा ॥ परम गुरु ॥ ३ ॥
पर परिणति अपनी करी माने क्रिया गर्वे घेलो, उनको जैन
कहो क्युं कहीये सोहि मूरखमें पहेलो ॥ परम गुरु ॥ ४ ॥
क्रिया मूढमति (जो) अज्ञानी, चाले चाल अपूठी, जैन दीखन।
उनमें हि नहि कहेसा सब है झूठी ॥ परम गुरु ॥ ५ ॥
ज्ञान भाव ज्ञानी सबमां हि, शिव साधन सद्दहीये नाम भेखसे।
काज न सिज्झे, भाव उदासी रहीये ॥ परम गुरु ॥ ६ ॥
ज्ञान सकल नय साधन साधो, क्रिया ज्ञान की दासी, क्रिया।
करत है धरत है ममता, आइ गले में फांसी॥ परम गुरु॥७॥
व्यवहार ज्ञान विनु नहि क्रिया, व्यवहार ज्ञान विनु नाही क्रिया ज्ञान
किरिया दोनो संग मिलत है ज्युं जल रस जलमांहि॥ परम गुरु॥८॥
क्रिया मगनता बाहिर देखत ज्ञान शक्ति जस भांजे, सद्गुरु।
शीख सुणे नहि कबहुं सो जन जनन लाजे ॥ परम गुरु ॥९॥
तत्त्व बुद्धि जिनकी परीणती है, सकल सूत्रकी कुंची जगजस।
वाद वधे उनहिको जैन दशा जस उंची ॥ परम गुरु ॥ १० ॥

## श्री अध्यात्म पद

परम प्रभु सब जग शब्दे ध्याव, जबलग अंतर भेद न माजे
तबलग कोउन पावे ॥ परम प्रभु ॥ १ ॥

सकल अंश देखे जब जागी आत्मीणु ममता आवे।
ममता अंध न देखे यावो, चित चीहुरे भाग ॥
परम प्रभु ॥ २ ॥

सहज शक्ति और गुरुकी भक्ति, जो चित जाग जगावे।
द्रव्य गुण पर्याय से अपने, तो कोई ल्य लगावे॥
परम प्रभु ॥ ३ ॥

पढत पुराण वेद और गीता मुर्ख अर्थ न पावे।
इत उत फिरत गृहित रस नाहि, ज्यू पशु चरवित चावे॥
परम प्रभु ॥ ४ ॥

पुद्गलसे न्यारो प्रभु मेरा, पुद्गल आप छिपावे।
उनसे अंतर नहि हमारा, अब कहा भागा जावे॥
परम प्रभु ॥ ५ ॥

अलख अजर और अमर नीरजन सो प्रभु सहज सुहाव।
अतरयामी पूरण प्रगटयो, सेवक यश गुण गाय॥
परम प्रभु ॥ ६ ॥

श्रीमद् विजयानंदसुरी ( आत्मारामजी ) महाराज कृत अनित्य
भावना सज्जाय

यौवन धन थीर नही रहना रे ॥ आचली ॥
प्रात ,समयजा नजरे आत, मध्य दिने नहि दीसे।
आ मध्याने सा नहि राते, क्यू विरथा मन हीसे॥ यौवन ॥ १

पवन झकोरे बादल खिरसे, त्यूं शरीर तुम मासे।
लच्छी जल तरंग घन चपला त्यु वाधे मन आसे॥ यौवन ॥ २
वल्लभ सग सुपनकी माया इन में रागादि कैसा,
छिनमें उडे अर्क तुल ज्यूं यौवन जगमें ऐसा॥ यौवन ॥ ३
चक्री हरी पुरंदर राचे मदमात रस मोहि।
काल दशामें मरीने पहुंचे तीनका खबर न कोही॥ यौवन ॥ ४
जग मायामें नहीं लोभाय आतमराम सयाने।
अजर अमर तु सदा नित्य है, जिन धुनी यह सुनी काने॥ यौवन ॥ ५

## दर्शन पाठ

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनम्
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥ १ ॥
दर्शनेन जिनेन्द्राणां साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥ २ ॥
वीतरागमुखं दृष्ट्वा, पद्मराग समप्रभम्।
अनेक जन्मकृत पाप, दर्शनेन विनश्यति ॥ ३ ॥
दर्शनं जिन सूर्यस्य, संसारध्वान्तनाशनम्।
बोधनं चित्त पद्मस्य, समस्तार्थ प्रकाशनम् ॥ ४ ॥
दर्शनं जिन चन्द्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणम्।
जन्मदाह विनाशाय वर्धनं सुखवारिधे ॥ ५ ॥
जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय, सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय।
प्रशान्तरूपाय जिनेश्वराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥ ६ ॥
चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥ ७ ॥

नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥ ८ ॥

## नव तिलक

पूजा करनेवालेको प्रथम अपनेको नव तिलक करना चाहिये ।

शिखा शीश की आनि, ललाट सु लीजिये ।
कण्ठ हृदय अरु कान, भुजा गनि लीजिये ॥
कूख हाथ अरु नाभि, सरस शुभ कीजिये ।
तब जिनवर को भजो, तिलक नव कीजिये ॥ १ ॥

# धर्मीजन लक्षण स्वाध्याय

धर्मीजन जो उन्हें कहना सुखी सबको चाहता है ।
दुःखी देख कर दया दिलकी, मनसे कभी न हटाता है ॥ ध ॥ १ ॥
पापी जीवमें प्रेम लाय के अपना कर मनाता है ।
अवसरमें उपदेश सुनाकर गुणोंमें आगे बढ़ाता है ॥ ध ॥ २ ॥
परपीडा कभी मनमें न धरता, सुख जीवोंका चाहता है ।
परधन पत्थर समान मानता परस्त्री जिसको माता है ॥ ध ॥ ३ ॥
निंदा नरककी खान हा मानता प्रशंसा पुण्य स्थान है ।
सयाग सतका सदा चाहता, हृदयमें नहीं कामका वास है ॥ ध ॥ ४ ॥
प्रभु नाम में प्रेम लगाता सोऽहं ध्यानको ध्याता है ।
सोऽहं सोऽहं रटन हृदयमें आत्म ज्ञान को पाता है ॥ ध ॥ ५ ॥
जन्म जरा और मृत्यु मार्ग छोडे सो आत्म ज्ञानी है ।
धर्म में ढोंग तजकर सच्चा धर्म में दिल दुभाता है ॥ ध ॥ ६ ॥

उच नीचका भेद मूल कर, मत पंथको न चाहता है ।
आतम ईश्वर पद ही माने, दया-दमन-दान चाहता है ॥ ध ॥ ७॥
दया जगत की जननी जानो, दया मोक्ष प्रधान है ।
दया दिलमें रखली जिन्होंने, कर्म कठण विधान है ॥ ध ॥ ८॥
'कल्पकसागर' दया भावमें सदा रमणता रखता है ।
तर गये जीवां तर रहे जीवों, तरेंग दया से कहते है । ध ॥ ९॥

## भजन

कहा मानलो जी मोरे भैय्या
भव भव रुलने में क्या सार है ।
तू बनजा बने तो परमात्मा
तेरी आत्मा की शक्ति अपार है ॥
भोग बुरे हैं, त्याग सज्जन थे,
विपद करें और नरक धर ।
ध्यान ही है एक नाव सज्जन जा
इधर तिरे और उधर धरे ।
झूठी प्रीति में तेरी हार है
वाणी गणधर किये हितकार है ॥
लोभ पाप का बाप सज्जन,
क्यों राम कहे दुःख भार भरे
ज्ञान कसौटी परख सज्जन,
मत ढालियों का विश्वास करे ॥
ठग आदों की यहां भर मार है ॥
इन्हें जीते तो बेड़ा पार है ॥

नर तन था 'सौभाग्य' भजन से
हाथ लगा ना हाथ लगना।
पर आतम रस पान भजन जो,
जनम मरण और मरण मरण।
मोक्ष महलों का ये ही द्वार है।
बोझ रागी का बनना भार है।

ॐ अर्हं नम

# मोक्ष मार्ग

आत्मा जो संकल्प विकल्प करता है, वह कर्म हेतु है। वह कर्म जब उदयमें आता है तब सारे कर्मों को भोगते हुए जन्म मरण करणे पड़ते हैं। वह भवरूप संसार है। इन्द्रियोंके और मन के इष्ट विषयों व विषय जन्य बाह्य सुख हैं सो भणीक है अन्य त्यागी हैं पीछेसे वियोग जन्य दुःख रूप ये सदा हैं।

मन और इन्द्रियोंको प्रतिकूल विषयोंसे विषय जन्य बाह्य दुःख है। आत्मा अपनको नहीं पहचानता ज्ञान से सुख दुःख का अपना मिनता है। यह मानना केवल अज्ञान हैं अविद्या और मिथ्यात्व भी इसे कहते हैं। यह संसारमें भ्रमण करता है। परमतत्व प्राप्ति में विघ्न रूप है। अब यह ले ही जान लिजिये कि फल की इच्छा रखे बिना तपा हुआ तप, कीई गई क्रिया जपा हुआ जाप ध्याया हुआ ध्यान, और पढ़ा हुआ शास्त्र पाठ आदि कर्मोको निरजरा का हेतु है। किंतु सम्यक् तया मना गया जड़ चेतनका भेद अद्वैत भूत और निःशंक होना चाहिये।

जितना अंशमें सम्यग् ज्ञान उतना अंशमें सम्यग् दर्शन होता है।

जितना अंशमें निर्विकल्प दशाकी स्थिरता रहती है उतना ही निश्चय चारित्र होता है।

जितना अंशमें बाह्य पदार्थोंका विवेकमें किया गया त्याग उतने अंशमें व्यवहार चारित्र होता है।

निश्चयसे सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रही आत्मारूपमें मोक्ष है और व्यवहारसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी आराधना यह मोक्षका मार्ग है।

## आत्म निरीक्षण

१ आत्मा आत्माका शत्रु है। आत्मा आत्माका मित्र है।

२ जो वस्तु अपनी नहीं है उस वस्तु अपनी माननेसे आत्मा अपनाही शत्रु बन जाता है, कारण कि जैसी मक्खी श्लेष्मन को आस्वादन करती हुई स्वयं श्लेष्ममें चीपक जाती है वैसा ही पर पुद्गलमें राग रखनेसे मोहमें खींचा हुआ आत्मा चार गति रूप संसारमें भटकता है।

३ जो आत्मा स्वयं स्वभावका ज्ञाता है और अपनेमें ही मस्त रहता है कोईभी पर द्रव्य पर राग रखता नहीं है जैसा मुहमें रही हुई जीभ कितने ही चीकने पदार्थोंको स्वादती है तोभी सदाके लिये लुखी की लुखी दिखाई पड़ती है वैसे आत्मा भी जगतके सर्व पदार्थोंका ज्ञातादृष्टा होते हुए भी निर्लिप्त-निर्विकार होकर अनन्ता अनन्त आनन्दको पाता है। उसेही [illegible] है। शरीर,

इन्द्रिये आयु, श्वासोश्वास, वचन मन विगेरे अपना किया हुआ विभावका फल है। यह विभाव करनेकी आदत आत्माकी अनादि कालकी है। यह आदत जबतक नहीं छूटेगी तबतक संसार समुद्रमें गुलाट खाता रहेगा। इसी कारण हे चेतन चेत चेत थोडा भी समझ फाल चूका कपि जैसा शोचता है वैसा मानव भव चूका तू भी शोचे

## गुण तीन प्रकारके हैं

दर्शन गुण, ज्ञान गुण, चारित्र गुण जड और चेतन यह दानो द्रव्य हैं सो दोनो गुणपार्याय वाले हैं ऐसी जो श्रद्धा वही सम्यग् दर्शन है। तथा जड और चेतनका तात्विक अवबोध सो सम्यग् ज्ञान है। उसके पर ऐसा चेतन द्रव्यमें तल्लीनता तथा जड पदार्थोंमें व्यामोहित न होना सो सम्यक चारित्र है।

## दोष तीन प्रकारके हैं

माया शल्य नियान शल्य मिथ्यात्व शल्य यह तीन दोष पुद्गल नन्दी आत्मामे अगर भवाभिनन्दिमें होते हैं। त्याग वैराग्यमें भी माया प्रपंच रखनी जैसे कि मेरा मन कोइ भौतिक पदार्थोंमे मोहित नही होता है किन्तु अन्तरमें शिष्य मोह, किमती वस्त्रकी चाहना, शारीरिक सुखकी चाह अधिक भक्त बनानेकी चाह, मोहसे पुस्तक संग्रह करना, उपाश्रय बनवाना इत्यादिक अनेक झंझटसे जीव मोहित रहता हुआ भी निर्मोहिका दमाम रखना वही माया शल्य दोष है।

त्याग वैराग्य तप आदिके फल की इच्छा जैसा राजा महाराजा चक्रवर्ति इत्यादि ऋद्धिकी चाह, रखना यह निदान शल्य दोष है।

वीतराग देवको अवीतराग देव कहना या मानना, सत्साधुको असत्साधु कहना या मानना, सद्वस्तुको असद्वस्तु कहना या मानना, समारंभी साधु को निरारंभी साधु कहना या मानना असत्य पदार्थोंको सत्पदार्थ कहना या मानना जड़ को चेतन कहना या मानना चेतनको जड़ कहना या मानना इत्यादिक मिथ्यात्व दोष कहा गया है।

प्रश्न —जो आदमी जड़ मूर्तिको साक्षात् चैतन्यमय प्रभु मानते हैं उन्हे मिथ्यात्व दोष नहीं लगता है?

उत्तर —स्थापना निक्षेपमें जड़ पदार्थकी स्थापना कर अपना सद्भावका आरोपण किया जाता है। पिंडस्थादि ध्यानके लिये स्थापना आलम्बन रूप है। जैसे भावनाशील आत्माको जड़ नाम में भी गुणवान् आत्मासेही लक्ष्य रखना पड़ता है, वैसा हि स्थापनामेंभी गुणवान आत्माका लक्ष्य देना पड़ता है, ऐसा यदि नहि समजा जाय तो निर्गुणिका नाम भी महावीरादि रखा जाता है तो उसे क्या प्रणाम क्या जायगा? अपितु कदापि न होगा तो स्थापनामें चैतन्यका भाव लानेसे कदापि दोष नहीं लगता है।

## विश्व-शान्तिका सदेश

विश्वशांति चाहक मानवको शांतिके साधनोंको पहले जानना चाहिये। हे आत्मन् तुझे शांतिकी चाह होतो पहले

(५) मैं अनादि कालसे इस संसार चक्रमें भ्रमण कर रहा हूं मैंने अनेकों जीव के साथ अनन्तवार अनन्त सबंधोंसे जुड़ हुआ हूं उससे किये गये राग-द्वेष व संबंधों को भी वीतराग प्रभु की आज्ञाका पालन करता हुआ सर्व जीवोंसे क्षमाता हूँ सर्व जीव मुझे क्षमा करे यही प्रार्थना।

सत पुरुषका लक्षण।

चित्ताह्लादि व्यसन विमुख शोकतापापनोदि।
प्रज्ञोत्पादि श्रवण सुभग न्यायमार्गानुयायि॥
तथ्य पथ्य व्यपगतमल सार्थक मुक्त बाधम्।
यो निर्दोष रचयति वचस्त बुधा सतमाहु॥ १॥

प्रश्न – सतपुरुष किसे कहना चाहीये?

उत्तर जिनका वचन गुणवान हो, उनहीको सत कहना चाहिए।

प्रश्न – वह वचन कैसा होना चाहिए?

उत्तर चित्तको आह्लादक-खुश करनेवाला हो, व्यसनसे विमुख हो अर्थात् इन्द्रियो क विषयोंमें खींचनेवाला न हो, शोक और तापको हटानेवाला हो, सुननेमें सुखदाई हो, न्याय मार्ग से अनुकूल हो, तथा-सत्यगुण सहित हो, पथ्य हितकारी हो, पूर्वापर विरोध रहित हो, निर्दोष-व्याकरणदोष रहित हो उक्त गुणवाले वचनोंको बोलतेहो और आचरण उस मुताबीक करते हो उनहीको साक्षर गण सत कहते है

卐

यौवने विक्रोत्येव, मन संयमिनामपि।
राजमार्गेऽपि रोहन्ति प्रावृट्कालेकिलाङ्कुरा॥ १॥

युवानी में सबमिसोंका मन भी विचलित होजाता है।

'युवानी दीवानी है'

" युवानी गद्धा पच्चीसी कहलाती है

जिसने युवानीको सभाल रखी और सदाचार की महार छाप भुसमें नहीं दी वही इस विश्वका वीर पुरुष है। यानि युवानीमें इन्द्रियों पर सयम रखना वह तो आग पर पैर रखकर नहीं जलना जसा दुष्कर है। उसी इन्द्रियजीतको पुरुषोत्तमकी उपमा दी जाती है।

सामान्यता युवानीमें सयमियोंका भी मन चलित होता रहता है, तो दूसरे सामान्य जीवोंका तो कहना ही क्या! दृष्टान्त से दिखलाते हैं कि यथाऋतुमें गजमालाभी अकुरित हो जाता है जैसा ही सयमि भी युवावस्थामें ज्ञानोपयोगसे स्खलित होय तो मन चचल हो जाय उसमें आश्चर्य ही क्या! तस्मात् युवानीमें मनको जीता उनिको कोटि कोटि धन्यवाद।

ढाई अक्षर धर्म के ही आत्माकी उन्नति करते हैं।

श्लोक– बाल्यादेवचरेद् धर्म मनित्य खलु जीवितम्।
फलाना मिव पक्काना देह नाशो विनिश्चित ॥

अर्थ – बाल्यकालमें ही धर्मको आचरण करना चाहिये कारणकि जीवोंका जीवन अनित्य होता है जैसे फल पका हुवा पवन (हवा) का झोका लगनेही गिर पड़ता है उसीतरह जीवोंकी देह नाश होजाता है।

धर्म दो प्रकारका है। व्यवहार धर्म और निश्चय धर्म। श्रावक धर्म और साधु धर्म। अथवा लौकिक धर्म और लोकोत्तर धर्म। लोकोत्तर धर्म श्रावक और साधु-मुनि धर्म संबंधि है धर्म बाह्य पदार्थसे खरीदनेकी वस्तु नहीं है धर्म तो आत्माका गुण (निजी) गुण है जो व्यवहार धर्म पालते हैं उन्हें निश्चय धर्मकी प्राप्ति होती है। व्यवहारके बहुतसे भेद है जैसे दानशील तप व भावना भाव चगैरह सब व्यवहारके भेद है जिनि श्रावक व मुनि दानोको ही पालना चाहीये। प्रारम्भमें दानको प्रधानता है कारण की जीवका भला चाहता है वह दूसरे जीवको उपयोगी वस्तुका दान करता है व दानी जीवोंके अस्तित्वता व अनुकम्पा पूर्वक दान देना चाहिये दिया गया पदार्थ अनित्य है वह किसीका दानसे कीर्ति आदिकी वृद्धि व नम्रतादिकी पुष्टि होती है। यदि अज्ञानी जीव भी भाव सहित दान करता है तो वहभी परम्परासे मोक्षका अधिकारी होता है तो फिर ज्ञानीका तो कहना ही क्या है।

प्रश्न – दानका जिन्होने पुण्यका फल बताया है सो पुण्य कर्म सिद्ध है वह जड है सो जड़ने धर्मका अनुग्रह करता है आश्रव रूप है व इसको आत्माका धर्म कहना यह सत्यसे परे। (जुदा है) आश्रव बंधका कारण है व बंध मोक्षको रोकने वाला है अर्थात इससे जीवको मुक्ति नही मिल सकती इसलिये मोक्ष चाहनेवाली आत्माको आश्रव व बंधका मार्ग दिखलाना यह तो घोर मिथ्यात्व है।

उत्तर – दयालु मित्र कार्य में कारणका उपचार किया जाता है। कारणभी दो प्रकारका है, नित्यकारण व अनित्यकारण, नित्य कारण हमेशा साथ रहता है व अनित्य कारणकार्य होते ही छूट जाता है जैसे कटि प्रदेशमें तुंबा बांधकर जो नदी तैरकर

पार करता है तब हाथ पैर तो हिलाने ही पड़ते हैं नदी पार होनेके बाद वह तुम्बेको छोड़ जाता है पर हाथ पैरोंको साथ ले जाता है वैसेही पुण्य आस्रव कारण तुम्बेके समान है व सवर-निर्जरा रूपतत्व हाथ पेर के समान है।

> देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय संयम तप।
> दान च षट्सुकार्याणि गृहस्थानां दिने दिने ॥१॥

श्रावक (गृहस्थ) धर्ममें ६ कर्तव्य है देव पूजा, गुरुवंदना स्वाध्याय संयम पालना, तप करना और दान देना आदि हैं व अव्रतसम्यग्दृष्टि के तप संयम छोड़कर बाकीके ४ है उनमेंसे दान देते समय विनि भाव जरूर होना चाहिये कारणकि प्रेमभाव के बिनाकिये हुवे कार्यसे आत्मगुणोंकी प्राप्ति नहीं होती।

दान तीन प्रकारका है भक्तिदान प्रीतिदान, व अनुकम्प जीवदान सो भक्तिदान साधु आदि गुणीजनोंकी भक्ति व प्रेम, आदरसहित देना चाहिये। प्रीतिदान साधर्मी श्रावकभाइयोंको प्रेम व आदर पूर्वक देना चाहिये। व अनुकम्पजीवदान अन्य जीवोंको (गरीब दुःखीजनों) दया पूर्वक देना चाहिये व दान करते समय पात्रका विचारभी करना चाहिये। वहभी तीन प्रकारका है। सुपात्र, अपात्र व कुपात्र सो सुपात्र जैनसाधु व्रती, अपात्र दीन दुःखी गरीब व कुपात्र कुगुरु आदि।

> पात्राऽपात्र विचारोऽस्ति धेनु पन्नगयोरिव।
> तृणात्संजायते क्षीरं, क्षीरा संजायते विषम् ॥२॥

अर्थ - नीतिकार कहते हैं कि पात्र अपात्रका विचार करके दान करना चाहिये। दृष्टांतमे बतलाया है कि सर्पको यदि दूधभी पिलाया जाय तो भी विषही प्राप्त होगा जबकि गायको

घास खिलानेपर दूधकी प्राप्ति होती है ॥ अन्य जैन ग्रंथ पात्र के दो भेद बताए गये हैं सुपात्र और पात्र। जीव मात्र पात्र है, जैसा बरसातका नहीं बरसने लायक कोई प्रदेश नहीं है। वह सब जगह बरसता है। वैसे दानी सबहीको दान देता है। परन्तु गुणवानको सुपात्र समजकर भक्ति भावसे दान देता है। उसी से दाताको पुण्यानुबंधि पुण्यकी प्राप्ति होती है। वह संवर निर्जरा धर्मका सहकारी होता है और केवल पात्रमें किया गया दान संसार अनुकूल विषयको देनेवाला होता है। परंपरा में त्याग धर्म का कारण ना बनता है। उसीसे उसको विष की उपमा, संसारिक सुख देनेवाला होनेसे दी गई है। और सुपात्र में देनेसे संवर भाव, निर्जरा भाव रूप दूधकी उपमा है। सुपात्रमें किया हुआ दान शीघ्र मोक्षका कारण बनता है उस में जिस दाता को भावनामें केवल त्याग भाव और मोक्षका ही ध्येय रहता है तो वह दान शीघ्र ही मोक्ष मारग के सहकारी होता हैं। यदि संसार-सुख-भाव दाताके हृदय में रमता होय तो वह दान सम्यग् दर्शन हुवे पीछे संवर निर्जरा के कारण होते है। केवल पात्रापात्रका विवेक करना चाहिये। यहां कि अपात्रमे दान का निषेध करना है, और सुपात्र मे विधेय गिनाता है। विवेक के कारण गधा और घोड़ा एक न गिनना चाहिये।

सुपात्रके तीन भेद है जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। जघन्य-सुपात्र अविरत श्रावक श्राविका। मध्यम सुपात्र देश विरत श्रावक श्राविका। उत्कृष्ट सुपात्र निर्ग्रंथ मुनि। अथवा बकुश कुशीलादि मुनि भी आत्मा साधन करने वाले है।

अपितु दान के तीन भेद भी माने गये हैं, तामसी दान, राजसी दान और सात्विक दान। अहंभाव या तो कटाक्ष या लज्जासे डरके दिया हुआ दान तामसी है। तथा ख्याति की इच्छा, इह लोक परलोक संबंधी सुख की इच्छा रखता हुआ दाताका दिया हुआ दान राजसी है। और फलकी इच्छा रखे बिना नीतिसे कमाया हुआ द्रव्य अर्थात् वित्त चित्त और पात्र की शुद्धि पूर्वक दिया गया दान को सात्विक गीना गया है। और भी दान देने लायक द्रव्य के चार भेद हैं। १ ज्ञान दान, २ अन्न दान, ३ वस्त्र दान ४ और आरोग्य – औषधि दान है। ज्ञान दान को जीव दूसरे भव में संस्कार रूपमें साथ ले जा सकता है और ज्ञानसे भव-संसारका अन्त-नाश भी कर सकता है। तो ज्ञान दान सबसे उत्तम है। ज्ञानके रक्षण के लिये ज्ञानियोंको वस्त्र पात्र, अन्न औषधी आदि का दान करना भी जरुरी है। ज्ञान दान आधेय है और अन्य दान आधार भूत है। परन्तु ज्ञान बिन और वस्तुयें जड स्वभाव की होनेसे परभव में साथ नहीं जा सकती हैं और ज्ञान चेतनका गुण होनेसे चेतन के साथ ही जाता है। यह बात भावज्ञान की है, कारण कि द्रव्य ज्ञान पुस्तकादी रूप है साध्यभाव ज्ञान के पुस्तकादि साधनरूप है सो साथमें कैसे जावे?।

अब ज्ञान दान बिना दूसरे दान केवल पुरुषार्थ घातक है, और मूर्खताको बढाने वाले है। उसीसे अज्ञानी को दिया गया दान अनुकम्पनीय है तो गृहस्थाश्रमी को अभय दान, सुपात्र दान अनुकम्पादान उचित दान कीर्तिदान भी करना उचित हैं। अभय दान-अपने से किसी का भय उत्पन्न न होने देना सुपात्रदान साधर्मिका जरुरी वस्तु देना सो। अनुकम्पादान-अभ्यागतको देना सो। उचित दान-बिना माग भाईबंदु दास

कषायकी मंदताको करता है, तप गुणमें जोड़ता है, पुण्य पिंड या शुभ प्रकृतिका बंध करता है, पाप प्रकृतिका नाश है, इससे स्वर्ग और मोक्षका हेतु भूत है ॥ ३ ॥ तो ऐसी सुंदर बाते जानकर कौनसा सज्जन दान देनेमें प्रमाद करेगा! “ शुभस्य शीघ्रम् ” अपितु कोई नहीं।

अब <u>शियल धर्म के और जरासा विचारेंगे</u> — शील गुण मानवके लिये अत्यन्त उत्तम गुण है। एक कविने कहा है कि- “ शयल जगमे दीवा मेरे प्यारे, शयल जगमें दीवो। अत शीलव्रत जगतमें दीपक तुल्य है। इसमें शरीरकी रोशनी बढती है, वाणी भी सत्यनिष्ठ बनती है मन मजबुत होता है। देवगण भी शीलवानके पैर पूजते है, भूत पिशाच डाकण शाकण और मलिन देव शीलवानको नहीं सताते है, लोकमें सुंदर ख्यातिको पाता है कोई भी माता बहन बेटीके लिये आधेय भूत होता है। शीलवान सज्जन दिनप्रतिदिन अपनी उन्नति करता है। जो शीलसे रहित है वह सदा बुरे हालसे जीवित रहता है यत —

‘ कामान्धस्त्यजति प्रबोधयति च स्वस्त्रीं परस्त्रीं च यो
दत्तस्तेन जगत्य-कीर्तिपटहो गोत्रे मषी कूर्चक ।
चारित्रस्य जलाञ्जलिर्गुणगणारामस्य दावानल
संकेत सकलापदा शिवपुरद्वारे कपाटो दृढ ॥ ४ ॥

अर्थ –जो पुरुष कामसे पीडित होकर अपनी स्त्रीको तजता है, और परस्त्रीको चाहता है या इनके साथ कामक्रिडा करता है उसने अपने लिये अपकीर्तिका पट यानी ढोल पिटवाया है, और अपने गौत्र मर्यादाके मषिकाकी तरह कुचडवाता है,

संयमको जलाञ्जलि दी है गुणरूप बागमे ज्वाला लगाई है, सकल आपदाओको आमंत्रण दीआ है और मोक्ष नगरके द्वारको ठीक ठीक व दृढ बंध किया है ॥४॥ सो सज्जनोसे प्रार्थना है कि शीलव्रत पालकर सुखी हो। आगे शीलकी महिमा अधिक अधिकतर बताते हैं कि-यत-

( मालिनी वृत्तम् )

हरति कुलकलंकं लुंपते पापपंकं ।
सुकृतमुपचिनोति श्लाघ्यतामातनोति ।
नमयति सुरवर्गं हंति दुर्गोपसर्गं ।
रचयति शुचि शीलं स्वर्गमोक्षौ सलीलं ॥५॥

यानी-जो आदमी या स्त्री पवित्र शीलका पालन करते हैं वह कुलके कलंकको पुछतेहैं और पाप मलको धोते हैं सुकृतको जमा करते हैं लाघवकर स्तुति पात्र बनते हैं देवताओंसे नमस्कार कराते हैं और दुःख तथा उपसर्ग उनसे दूर भागते हैं स्वर्ग और मोक्ष लीलाके साथ मीलजाते हैं ॥५॥ ज्यादी क्या ? धन्यवाद शीलका तथा किं बहुना ? ॥

<u>अब तप धर्म को कुछ विचारेंगे</u> — जो आत्मा तपस्या करता है, वह पूर्वके चीकने बंधे हुए कर्मोंको जलाकर खाक करता है। तप जिनेश्वर भगवंतोने बारा प्रकारका बताया है। उसमें छे बाह्य हैं और छे अभ्यन्तर हैं। अनशन उणोदरिका, वृत्ति संक्षेप, रसत्याग, काय क्लेश संलिनता चूल्हे पर पकाई गई रसोईको <u>अशन</u> कहते हैं। पानी दूध छाछ वगैरेको <u>पान</u> पीने लायक पदार्थ कहते हैं। मेवा खजूर सोपारादि

पदार्थको या बिना पकाई खाने योग्य वस्तुको स्वाद कहते हैं मुख शुद्धि करने लायक पदार्थ जैसे सोपारी धनीयकी दाल, चूर्ण विगरेको स्वाद कहते है । यह चार आहारके त्यागको अनशन या उपवास कहते है । खानेकम दो चार कवल कम खानेमें उनोदरी तप होता है । खाने पीने पहरने ओढणेके पदार्थ तथा घर वास्तु और कुछ वापरनेकी चीजका प्रमाण करना यह वृत्ति संक्षेप तप है । छ रस यानी घी दूध, दही, गुड़ मीठा-मीठी, तेल मधु मक्खन, मदिरा-सराब मांसादिका त्याग करना उसे रसत्याग तप कहते है । केश का लुंछन करना गर्मीकी ऋतुमें आतापना लेना नदी किनारे बैठकर शरदीमें ठंड सहना नंगे पैर यात्रा करणी, विगरेको कायक्लेश तप कहते है । काई भी तरहका आसन लगाकर बैठना याने अंगोपांग संकोच कर बैठना उसे संलीनता तप कहते है

दूसरे लोक जिसे देख सकते है उसे बाह्य तपकी संज्ञा कहते है । जो दूसरे लोक देखने नहीं पाते है, उसे अभ्यन्तर तपकी संज्ञा कहते है यह भी छे प्रकारकी है । प्रायश्चित विनय वैयावच्च, स्वाध्याय ध्यान कायोत्सर्ग । दोषका दंड लेना यह प्रायश्चित तप है गुणिजनका विनय करना सो विनय तप है । विनय यानी नमस्कार करना नीचे आसन बैठना विगरे । छोटे बड़े गुणीजनकी सेवा करणी सो वैयावच्च तप है । पढे हुए शास्त्रका स्मरण करना याता नया शास्त्र वाचना सो स्वाध्याय तप है । एक विषयका एक चित्तसे मनमें चिन्तवन करना सो ध्यान तप है । पद्मासन या खड्गासन, सुखासन लगाकर ध्यान करना उसे कायोत्सर्ग तप कहते है । यह बारा प्रकारका तप सम्य

प्रकारसे किया हुआ कर्मोंका क्षय करता है [illegible]
देता है। ऐसा तप सम्यग् दृष्टि और सम्यग् ज्ञानी [illegible]
मोक्ष पाते हैं। अब भावना धर्मके विषयमें दृष्टान्त [illegible]

को मज्जन दान शील तप रूप धर्म के [illegible]
समरथ नहीं है उनोंने भाव धर्मका तो अवश्य [illegible]
चाहिये। यत भाव भावना भाविए, भाव दीजे दान [illegible]
जिनवर पूजिये भाव वधन्त ज्ञान ॥ १ ॥ [illegible]
ऐसी उत्तम चीज है कि यह ज्ञान बिना [illegible]
इसलीये मनुष्यको ज्ञान प्राप्त करनेमें आलस्य [illegible]
'आलस्य कुतो विद्या अविद्यास्य कुतो [illegible]
कुतो मित्र, अमित्रस्य कुत सुखम्। यानी [illegible]
नहीं मीलती, विद्या बिना धन [illegible]
नहीं होते मित्र बिन सुख कहांसे हो। [illegible]
सो भावना जाननी चाहिए। वह [illegible]
माध्यस्थ और उदासीन या माध्यस्थ [illegible]
३ संसार, ४ एकत्व ५ अन्यत्व ६ [illegible]
९ निर्जरा १० धर्म ११ लोक, १२ [illegible]
अशरण, इन सभीय भाव भावना [illegible]

अब विस्तारसे अर्थ [illegible]
जीवोंमें रमना और विचारना [illegible]
नहीं है। कितने दिन तेरे [illegible]
खेदित न हो। सर्व जीव [illegible]
हुए है। हे जीव तेरा कोइ [illegible]
पिता, 'माता, भाइ भगिनी [illegible]
भोजाई पाकी आदि संबधोंमें [illegible]
अब किससे शत्रुता रखनी [illegible]

है कि अपने मित्रका कुछ न कुछ उपकार करना चाहिए।
यथा — 'जीवन्तु जन्तवः सर्वे क्लेशव्यसनवर्जिताः ।
प्राप्नुवन्तु सुखम्त्यक्त्वा, वैरं पापं पराभवम् ॥ ८ ॥

यानी– सर्व जीव क्लेश व्यसन-दुःखसे रहित हों पाप और पराभवको त्यागकर सब सुखी हों

'सर्वे सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा च कश्चिद्दुःखितः ॥ ९ ॥

और भी जैनेतर ग्रन्थोंमें यहि मैत्रीभाव बताया गया है कि सब सुखी रहो सब निरोगी रहो सब कल्याण करने वाले बनो, कोईभी दुःख न पाओ ।

अब प्रमोद भावनाको विचारेंगे – कि जिस वीतरागी भगवानको धन्य है की जिन्होंने रागद्वेषको जितकर आत्मशुद्धि की है। धन्य है क्षपकश्रेणि आरूढ पुरुषको। धन्य है अप्रमत्त प्रमत्त गुण स्थान वर्ती आचार्य उपाध्याय तथा मुनिराजोंको धन्य है देशविरत श्रावक श्राविका तथा अविरत श्रावक श्राविकाओंको कि जिन्होंने जड चेतनका भेद ज्ञान पाया है और आत्महितमें सदा जाग्रत है। जैसी माता अपना बच्चेमें बहुत अवगुण दिखतभी एक दो गुण देखकर खुशी मनोमन मनाती है वैसा ही मैत्री भावयुक्त सज्जन पुरुष या स्त्री दूसरेके यत् किंचिद् गुण देखकर प्रसन्न होते हो । यत

'मिथ्यादृशामप्युपकारसारं, सन्तोष सत्यादिगुणप्रसारम् ।
वदान्यता-वैनयिक प्रकारं, मार्गानुसारीत्यनुमोदयामः ॥१०

मिथ्यात्व निवृत्त भया नहीं है ऐसे जीव भी तो परोपका

करते है संतोष और मर्यादि गुणोंका धारक है और विनयी है मार्गानुसारी गुणवानोंकी हम अनुमोदन करते है। अपिच'

'प्रमादमामाद्य गुणे परेषां येषां मतिमज्जति साम्यसिन्धौ।
देदीप्यते तेषु मनःप्रमादो गुणास्तथैव विशदी भवन्ति' ॥११॥

परके गुणोंको प्राप्त करके प्रसन्न रहते है। जिनकी बुद्धि समता समुद्रमें डुबती है। तिनका मन उल्लासको पाता है, गुण उनके खाल बनते है। और भी-

'तप संयममायुक्त चेतसामात्मचक्षुषाम्।
विजिताक्षकषायाणां, स्वतत्त्वाभ्यासशालिनाम् ॥ १२ ॥
जगत्त्रय चमत्कारि, चरणाधिष्ठितात्मानाम्।
तद्गुणेषु प्रमोदोय सद्भि सा मुदिता मता ॥ १३ ॥

यानी-जो पुरुष या स्त्री तप स्वाध्याय यम नियम ध्यानादि युक्त चित्तवाले हैं तथा ज्ञान भूषित चक्षु है और पांचे इन्द्रियोंको विषय कषायोंको जीता है आत्म तत्त्वके अभ्यासमें मग्न हैं। और जगतका आश्चर्यकारी चारित्रको पालते है। उन्हीके गुणोंमें प्रमोद धरना आता है इनकोस पुरुष मुदिता भाव कहते है॥

अथ करुणाभाव विचारिये — कारुण्यमार्तागिदजाजिहीर्षेत् — दु खीजनोंपर दया लानी चाहिये जो जीव पूर्व प्रारब्ध अनुसार लूला लगड़ा, टुठा, अंधा, काढी नामर्द दरिद्री, पराधीन वस्त्रहीन, भूखा प्यासा अनेक रोगोसे पीडित, येसोंको अन्न पानी वस्त्र औषध विगेरे देकर दया लानी चाहिए। यत —

(शिखरिणी वृत्तम्)

उपायानां लक्षै कथमपि समासाद्य विभव
भवाभ्यासात्तत्र ध्रुवमिति निबध्नाति हृदयम्।
अथाकस्मादस्मिन् विकिरति रज क्रूरहृदया,
[illegible] ॥ १४ ॥

ग्यानी – ग्यानी उपायोंसे जो अति मिद्ध विषय पस्तुका किया गयाहै। उसीमें पूर्व अभ्याससे प्रेम करता है। परन्तु अकस्मात् निर्दय हृदय वाले विधि औरकी और ही कर बैठता है। शत्रुका आगमण आये वा रागका उपद्रव हाव अथवा मृत्यु, भय जरादि आकर खड़े हो जाये तब वह दीनहीन बनजाता है। ऐसे जीवों पै ज्ञानी कहते हैं कि करणा करो। अब जो आत्मा अति मानि अतिमानी, अतिमायावी अति लोभि हों। सातों व्यसनके सेवी हों। देव गुरु धर्म के निंदक हों। नास्तिक शिरोमणि हों। उसे जीवकी न निंदा करणी चाहिये न प्रशंसा। उदासीन भावसे उनकी दया करनी चाहिये। यत —

'लोक सर्वा भिन्नभिन्नस्वरूपा भिन्नैर्भिन्नै कर्मभिर्मर्मभिद्भिः।
रम्यारम्यैश्चेष्टितैः कस्य कस्य तद्विद्वद्भिः स्तूयते रुष्यते वा ॥१५॥'

यानी- इस विश्वमें लोक भिन्न भिन्न स्वरूपके हैं। जुदे जुदे कर्म मर्मके भेद हुये हैं। सुंदर और खराब चेष्टा करनेवाले हैं। विद्वान लोक किसकी निंदा करे और किसकी स्तुति करे। उनके लीये उदासीन – माध्यस्थ भाव ही परमार्थ है॥

अब अनित्य भावना विचारने योग्य होनेसे विचारी जाय।

श्रीज्ञानी भगवंत फरमाते हैं कि आयु वायुके जैसा चंचल है। सम्पदा आपदाका घर है। इन्द्रियोंके विषय सन्ध्याके आवादाव रंग तुल्य हैं। मित्र स्त्री पुत्र स्वजनादिकका सुख स्वप्न और इन्द्रजाल समान क्षणभगुर है। तो चर्म चक्षुसे देखी गई कोनसी वस्तु परलोकमें साथ जानेवाली हैं?। जो वस्तु अंतमें धोखा देती है। उसपर विश्वास करना बुद्धिमत्ता नहीं गिना जाता। यत

' प्रातर्भ्रातर्विहायनगतरुचया ये चेतनाचेतना,
दृष्टा विभ्रमण प्रमोद विदुरा भावा स्वत सुन्दरा ।
तास्तत्रय दिने विपाक विरसान् हा नश्यत पश्यत-
श्चेत प्रेतहत जहाति न भव प्रेमानु बध मम ॥ १६॥

यहा पर कवि रत्न महोपाध्यायजी महाराज श्री १०८ विनय विजयजी फरमाते है कि- हे भाइ ! प्रात समयमें चेतन अचेतन पदार्थ देखे जा रहे है वह कैसे है स्वच्छ रुचिकर, विभ्रमको प्रमाद कर और स्वत सुन्दर है। तो उसी दिन ही उनको विरस होते हुए देखते हैं, खेदकी बात है कि दिल हताश हो जाता है। ऐसी संसारमें प्रेम करने योग्य मेरे लिये कोइ वस्तु नहीं हैं। और भी-श्री शुभ चन्द्र आचार्य देव फरमाते हैं कि-

" ये चात्र जगती मध्ये, पदार्थाश्चेतनेतरा ।
ते ते मुनिभिरुद्दिष्टा प्रतिक्षणविनश्वरा ॥ १७ ॥ ,

यानी इस जगतमें जो चेतन और जड पदार्थ हैं उन्हें सब महर्षियोंने क्षणक्षण में नष्ट होनेवाले विनाशीक बताये हैं। जो प्राणी इन्हें नित्यरूप मानता है वह भ्रममें भूला पड़ा है जो सम्यग् विचार नहीं कर सकता है ॥ अब अशरण भावना भाया भाइ।

जो छ खंड पृथ्वीका स्वामी चक्री है। और देवोंका स्वामी देवेन्द्र है। शारदासे वरदान पाया हुआ कवीन्द्र है। मुर्देको बोलानेवाला धनवन्तरी वैद्य है। उन भी विकराल प्राणीका कालके झपाटेमें आके मृत्युके शरण होना पडता है। उन्हें बचानेवाला कोइ नहीं है तो दीन दुखी पामर प्राणीका तो कहेना ही क्या ? यत -

"शोचन्ति स्वजन मूर्खा, स्वकर्मफलभोगिनम् ।
नात्मानं बुद्धि विध्वस्ता, यमदंष्ट्रान्तरस्थितम् ॥ १८ ॥

अर्थ – अपने कर्म फलको भोगता हुआ कोई स्वजन मरजाता है तो मूर्ख लोक शोक करता है किन्तु अपने स्वयं यमकी दाढोंमें रहा हुआ बुद्धिहीन आत्मा अपना शोक नहीं करता यह अत्यन्त मूर्खता है। जगतमें देव गुरु धर्म–स्वात्मनिग्रह बिना कोई शरण करने लायक नहीं है। अब संसार भावना भाइये इस संसारमें अनादि कालसे भ्रमण करता हुआ जीव सूक्ष्म निगोदादि चौरासीलाख योनियोंमें राग द्वेष अज्ञान मिथ्यात्वके आधीन हुआ है। उनके फल स्वरूप अनन्त दुःख समय समयमें पाता है उसी संसारसे छूटनेके लिये भवि जीवको ऐसे प्रयत्न करना चाहिये। यत –

अनन्तान्पुद्गलावर्तानन्तानन्तरूपभृत् ।
अनन्तशो भ्रमत्येव जिवोऽनादिभवार्णवे ॥ १९ ॥

अर्थ – अनन्त पुद्गल परावर्त करता जीव अनन्तानन्त रूप पर्यायोंको धारण की है। सम्यग् दर्शनके अभावसे, या अप्राप्तिसे, अनादि अनन्त भव भटकही करता है। सम्यक्त्व प्राप्त किये गये पुरुषार्थोंसे जीव संसारसे छूटते हैं और छूटेंगे। औरभी संसारकी विडंबना देखाते हुए शास्त्रकार फरमाते हैं कि–

माता पुत्री स्वसा भार्या सैव संपद्यतेऽङ्गजा ।
पिता पुत्रः पुनः सोऽपि, लभते पौत्रिकं पदम् ॥२०॥

अर्थ – इस संसारमें प्राणीकी माता मरकर पुत्री होकर जन्मती है और बहन मरकर स्त्री संबंधसे जुडती है और फिर वही

स्त्री मरकर अपनी पुत्री हो जाती है। इसी प्रकार पिता मरकर पुत्र रूप धारण करलेता है तथा फिर वही पुत्र मरकर पितृपद भी ग्रहण करता है। इस तरहसे यह परिवर्तनशील संसारको जानकर किस सज्जनको वैराग्य न हो? ।' यदि यह प्रीति जो ममताभावसे लोगोंको मानते हैं स्वरूपसे परद्रव्यका भेद ज्ञान पाया हुआ ही भगवान है। वस्तुतः इस संसारसे छूटनेकी इच्छावाला वही सच्चा मुमुक्षु है॥ अब एक व भावनाको स्मरण करेंगे —

एकत्व — यह जीव एक ही सदा है कि इसके बिना दूसरेकी गति नहीं होती है। शरीरादि पदार्थोंके साथ मिलजाते हुए भी अपने स्वरूपसे स्थिर रहता है। जैसा कि आत्मा स्वभावसे अनन्त पर्यायोंसे मिलता हुआ भी निजगुण अपना स्वरूप परद्रव्यका नहीं होता है। न चेतन जड़के साथ तद्रूप होता है न चेतनका जड़से अनुग्रह होता है न कुछ उपकार होता है। किन्तु अनादिकालसे अपना स्वरूपका अज्ञान होनेसे परद्रव्यमें ममत्वभाव रखता हुआ संसारमें भ्रमण करता है। उपरोक्त शुद्ध एकत्वभावका विचार तो जीवको मोक्ष प्राप्ति अपने ज्ञानसे ही है यत

'एक एव भगवानयमात्मा ज्ञानदर्शन तरङ्गसरङ्गः ।
सर्वमन्यदुपकल्पितमेतद् व्याकुलीकरणमेव ममत्वम् ॥ २१ ॥

अर्थ - ज्ञान दर्शन चारित्र गुणसे रमा हुआ यह आत्मा ही भगवान स्वरूप है दूसरी सब कल्पना है। उसमें ममता रखनी सो व्याकुल करनेवाली दुःखदाई है।

एकता समतोपेता-मनामात्मन् विभावय ।
लभस्व परमानन्द-सम्पदं नमिराजवत् ॥ २२ ॥

अर्थ – एक समभावसे ही आत्माको विचारकर, और परमानंद स्वरूप स्वरूपका निर्विकल्पपना प्राप्त करो। आत्मामें जन्म, मरण कर्मसंग्रह करना और कर्मका फलका भोगना वगैरे सब एक ही आत्मा करता है तो फिर दूसरेकी आशा रखनी यह अज्ञान ही है। अब अन्यत्व भावना को विचारेंगे–

जो आत्मा परवस्तु प्रत्यक्ष करना विनाशको पाता है यह बात कहनी मिथ्या नहीं है। कर्माणु न प्राप्त कर ज्ञाता आत्माने कालसे कायम कष्ट प्राप्त नहीं किये? आत्मा विभावको कर कर शुभाशुभ पुद्गलोंका आश्रव करता है, रेशम-कीडेके मुवाफिक अपनेको आप ही कर्मोंमें फंस जाता है। तो हे आत्मन् विचार करके घर द्वार, हवेली, पुत्र, पौत्र, स्त्री भाई बहन माता पिता धन धान्यरूप परिग्रह वगैरे अपना साथम कोई नहीं आता है। मन वाणी और काया भी अपनेसे पर है तो दूसरेका क्या कहना? ॥यत –

अन्यत्वं किं न पश्यन्ति, जडा जन्ममराहिता।
यत्र न मृत्यु मपान मघणापि प्रतीयते ।॥२३॥

यानी-यद्यपि उक्त प्रकारसे शरीर और आत्माके अन्यपना है तथापि संसाररूपी पिशाचसे पीडित मूढ प्राणी क्यों नहीं देखते कि यह अन्यपना जन्म तथा मरणके सम्पातमें सर्व लोककी प्रतीतिमें आता है? अर्थात् जन्मा तब पुराना शरीरका साथ लाया नहीं, और मरता है तब यह शरीर साथ जाता नहीं है। इस प्रकारसे जीवकी पृथक्ता प्रतीत होती है॥ अपने अपने स्वरूप सर्व वस्तु विलसाय। ऐसे चितवे इससे जीवको सब परपदार्थमें ममत्व भाव न होना चाहिये"॥

अब अशुचि भावना विचारेंगे –

( मालिनी छंद )

अजिनपटलगूढं पञ्जरं कीकसानां,
कुथितकुणपगन्धैः पूरितं मूढ गाढम् ।
यमवदननिषण्णं रोगभोगीन्द्रगेहं,
कथमिह मनुजानां प्रीतये स्याच्छरीरम् ॥ २८ ॥

अर्थ– हे मूढ प्राणी! इस मनोरम मनुष्योंका यह शरीर चर्मके पटलोंसे (परदोंसे) ढका हुआ हाड़ोंका पिंजरा है तथा बिगड़ी हुई राधकी (पीपकी) दुर्गंधसे परिपूर्ण है, यमराजके मुखमें बैठे हुए रोगरूपि सर्पोंका घर है। ऐसा शरीर प्रीति करनेके योग्य नारी या पुरुषका कैसे हो? यह बड़ा आश्चर्य है॥ अपि च–

। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

स्नायं स्नायं पुनरपि पुनः स्नान्ति शुद्धाभिरद्भि–
र्वारं वारं बत मलतनुं चन्दनैरर्चयन्ते ।
मूढात्मानो वयमपमलाः प्रीतिमित्याश्रयन्ते,
नो शुध्यन्ते कथमवकरः शक्यते शोद्धुमेवम् ॥ २९ ॥

अर्थ– इस संसारमें मूढ आत्माएं अपवित्र शरीरको बार बार शुद्ध और सुगंधी पानीसे स्नान कराते हैं फिर चंदनादि द्रव्यसे विलेपन करते हैं और अपनेको मानते हैं कि हम पूर्ण पवित्र हुए हैं, परन्तु नहीं विचारते हैं कि कचरेके ढगको शुद्ध करनेको कौन शक्तिमान है?। कहनेका मतलब यह है कि आत्माता सदा पवित्र–निर्मल है, अमूर्तिक है और उसको मल लगताही नहीं है किन्तु कर्मोंके निमित्तसे जो इसके शरीरका

संबंध है उसे यह अज्ञानसे-मोहसे अपना मानकर भला जानता है, और मनुष्योंका यह शरीर सर्वथा अपवित्रताका घर है। इस कारण इसमें जब अशुचि भावना भावे, तब इससे विरक्त होकर अपने निर्मल आत्मस्वरूपमें रमणकी रुचि हो। इस प्रकार अशुचिभावनाका आशय है॥ अब आश्रव भावना विचार

। प्रहरणी वृत्तम् ।

मिथ्यात्वाविरतिकषाययोग संज्ञाश्चत्वारः सुकृतिभिराश्रवाः प्रदिष्टाः।
कर्माणि प्रतिसमय स्फुटैरमीभिर्बध्नन् सो भ्रमवशतो भ्रमति जीवा॥
॥ २६ ॥

यानी मिथ्यात्व-अविद्या या अज्ञान, अविरति कषाय, मन वचन कायाके योग और आहार भय-निद्रा मैथुन यह चार संज्ञायें आत्माओं कर्मोंके आगमको ग्रहण करते हैं, प्रति समय उस कर्मसे बंधा गया जीव अतिशयसे संसारमें भ्रमण करता है ऐसा महान् पुरुषोंने उपदेश किया है। मिथ्यात्वसे शुद्ध तत्वकी रुचि नहीं होती है अविरतिसे संवर-कर्मोंका रुकना नहीं होता है, कषाय-क्रोध-मान-माया और लोभसे अशुभ कर्मोंका आश्रवके साथ बंध होता है शुभाऽशुभ योगसे शुभाऽशुभ कर्मोंका-पुण्य-पापका बंध होता है चार संज्ञा भी प्राय अशुभ योगका ही कारण है। जैसा नदीका जल तालाबका द्वार खुला रहनेसे प्रवेश करता है, वैसा ही आत्मा रूप सरोवरमें विभाव रूप द्वार खुले रहनेसे कर्मरूप जल प्रविष्ट होता है। और भी

मनस्तनुवचःकर्म योग इत्यभिधीयते।
स एवाश्रव इत्युक्तस्तत्वज्ञानविशारदैः ॥२७॥

अर्थ-मन-वाणी कायाकी क्रियाको योग कहते हैं और इस

योगको ही सत्पुरुषोंने ( महर्षियोंने ) आस्रव कहा है । यह स्वरूप तत्त्वार्थसूत्रमें कहा है, यथा-'कायवाङ् मन कर्मयोग स आस्रव ' ॥ इति ॥ अब संवर भावना विचारते —

जो जो उपायसे आस्रवको रोक सके उन उपायसे अर्थात् सम्यक् श्रद्धानसे मिथ्यात्वका संयमसे अविरति प्रमादका शुभ ध्यानसे दुर्ध्यानका चित्तकी स्थिरतासे चपलयोगोंका क्षमासे क्रोधका नम्रतासे मानका सरलतासे मायाका निःस्पृहतासे लोभका अन्यभी आस्रवके कारणोंका संवर भावसे करना चाहिये । यथा –

सर्वास्रवनिरोधाय संवर स प्रकीर्तित ।
द्रव्यभावविभेदेन सद्विधा भिद्यते पुन ॥ २८ ॥

अर्थ– समस्त आस्रवोंके निरोधको संवर कहा है । वह द्रव्य संवर और भावसंवरके भेदसे दो प्रकारका है । ध्यानसे कर्मोंके पुद्गलका प्रवेशका द्रव्य संवर कहा है और संसारके कारण रूप कर्मग्रहणकी क्रियाका रुकनेसे भावसंवर होता है । ऐसा परम आगमका कथन है ॥ अब निर्जरा भावनाको विचारते–

जिससे जीवसे कर्म गल जाते हैं उसे सत्पुरुष निर्जरा कहते हैं यह निर्जरा जीवोंको सकाम और अकाम दो प्रकारकी होती है । इनमेंसे पहिली सकाम निर्जरा तो यम धारियोंके होती है और अकाम निर्जरा मिथ्यादृष्टि अविरति सम्यग् दृष्टी आदि जीवोंके होती है । जिस प्रकार वृक्षोंके फलोंका पकना एक तो स्वयं ही होता है दूसरे पाल देनेसे भी होता है । इसी प्रकार कर्मोंका पकना भी है अर्थात् एक तो कर्मोंकी स्थिति पूरी होनेपर फल देकर स्वयमेव होते हैं और दूसरे सम्यग्दर्शनादि

सहित तपश्चरण करनेसे कर्म नष्ट हो जाते हैं–कहा जाता है यत–

। उपजाति वृत्तम् ।

यथा सुवर्णस्य शुचिस्वरूपं दीप्तः कृशानुः प्रकटीकरोति
तथात्मनः कर्मरजो निहत्य, ज्योतिस्तपस्तद्विशदीकरोति ॥२९॥

अर्थ– जैसा तेजस्वी अग्नि सोनेको शुद्ध करता है, वैसा ही तपरूप अग्नि आत्मासे लगे हुए कर्मोंको जलाकर आत्माको शुद्ध करता है ॥ अब धर्म भावनाका चिंतन करते हैं व्यवहार और निश्चय धर्मका विचार करना यही धर्म भावना है। व्यवहार धर्मका फल कहते हैं कि–

। मन्दाक्रान्तावृत्तम् ।

प्राज्यं राज्यं सुभगदयिता, नन्दनानन्दनानां ।
रम्यं रूपं सरसकविता–चातुरीसुस्वरत्वम् ।
नीरोगत्वं गुणपरिचयः सज्जनत्वं सुबुद्धिः,
किं नु ब्रूमः फलपरिणतिं धर्मकल्पद्रुमस्य ॥ ३० ॥

अर्थ – व्यवहाररूप धर्म यानी पुण्यरूप धर्म जो कल्पवृक्ष समान है उसीका फल – बड़ा राज्य, सुंदर स्त्री और पुत्र, सुंदररूप और कवित्वशक्ति, मधुर कंठ नीरोगी शरीर गुण जाननेकी शक्ति सज्जनता सद्बुद्धि ज्यादा क्या कहूं? यह सब शुभ योग रूप धर्मवृक्षका ही फल है। निश्चय धर्म या आत्म धर्मका फल तो मोक्ष ही है।

यत – दशलक्षणयुतः सोऽयं जिनैर्धर्मः प्रकीर्तितः ।
यस्यांशमपि संसेव्य, विन्दन्ति यमिनः श्रियम् ॥ ३१ ॥

अर्थ– यह धर्म जिसका अंशमात्र भी सेवन करके संयमी मुनि मुनिको प्राप्त होते हैं उस जिनेन्द्र भगवानने दश लक्षण युक्त कहा है ॥ सो इसतरह है।

तितिक्षा मार्दवं शौच,मार्जवं सत्यसंयमौ।
ब्रह्मचर्यतपस्त्यागाकिंचन्यं च धर्म उच्यते ॥३१॥

अर्थ– क्षमा १ मार्दव २, शौच ३, आर्जव ४ सत्य ५, संयम (संवर) ६ ब्रह्मचर्य ७, तप ८, त्याग ९, और आकिंचन्य १० ये दश प्रकारके धर्म हैं। सो शुद्ध व्यवहाररूप हैं, जिससे राग द्वेष सर्वथा नष्ट हो गये हैं यही निश्चय धर्म है। व्यवहार साधन है और निश्चय साध्य है ॥ अब लोक स्वभाव भावनाको भाविये

जितने आकाशमें जीवादिक चेतन अचेतन पदार्थ ज्ञानी पुरुषोंने देखे हैं, सो ना लोक है,। उसके बाहार जो केवल मात्र आकाश है उसे अलोकाकाश कहते हैं। तीन भुवन सहित यह लोक अंतमें सब तरफसे अतिशय वेगवाले और अतिशय बलिष्ट तीन वात वलियासे वेष्टित है और ताड़वृक्षके आकार सरिखा है यह शाश्वत है इसको किसी करता कोई नहीं है, इसी लोकाकाशमें जीव और जड़ पदार्थ अपनी २ पर्यायोंकी करते हुवे रहते हैं और यह लोक छ द्रव्यका (धर्म अधर्म आकाश, पुद्गल, जीव और कालरूप है विस्तार अन्य ग्रन्थमें देखीये। इस भावनाका संक्षिप्त अभिप्राय यह है कि लोक जीवादिक द्रव्योंकी रचना है। जो सब द्रव्य अपने अपने स्वभावको लिये हुए भिन्न भिन्न तिष्ठते हैं। उनमें आत्म द्रव्य आत्म द्रव्य है। उसका स्वरूप यथार्थ जानकर, अन्य द्रव्योंसे ममता छोड़कर, आत्म भावना करनाही परमार्थ है। समस्त द्रव्योंका यथार्थ स्वरूप जानना चाहिये जिससे मिथ्या श्रद्धान दूर हो जाता है यत –

एवं लोको भाव्यमानो विविक्त्या, विज्ञानां ध्यानसंसक्तिहेतुः ।
स्थैर्यं प्राप्ते मानसे ह्यात्मनीना सुप्राप्यैवाध्यात्मसौख्यप्रसूतिः ॥
॥ ३३ ॥

अर्थ- इसीतरह भिन्न भिन्न युक्तियोंसे लोककी भावना भाते हुए विद्वानोंका मन स्थिरताको प्राप्त होता है और मनकी स्थिरता होते हुए आत्माको अध्यात्मसुख प्राप्त होता है, ।
अब बोधि दुर्लभ भावनाका विचार करते-

अनादि कालसे जो लोक स्वरूप उसीमें जीव विविध योनियोंको प्राप्त करता हुआ नित्य निगोद नारक असुर भुवनवासि व्यन्तर वाणव्यन्तर तिर्यञ्च, मनुष्य, ज्योतिष्क देव स्वर्ग के भवन, पर नारक यमानिक देवादिक पर्यायोंको धारण करता हुआ भी जीव जबतक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं करता है तबतक संसारसागरका अन्त नहीं पाता है। जिसतरह जीव सम्यग्दर्शन पाकर भी जैनधर्मकी आराधना करकर दुर्लभ बोधि प्राप्त है। बोधिलाभ समागम दुर्लभ है, तो सज्जनोंको विचारना चाहिये कि यत —

(शार्दूलविक्रीडित वृत्तम्)

यावद्देहमिदं गदैर्न मुषितं नो वा जराजर्जरं,
यावत्त्वक्षकदम्बकं स्वविषयज्ञानावगाहक्षमम् ।
यावच्चायुरभङ्गुरं निजहिते तावद्बुधैर्यत्यतां,
कासारे स्फुटिते जले प्रचलिते, पालिः कथं बध्यते ॥ ३४ ॥

अर्थ- जबतक यह देह रोगसे पीडित न हो और वृद्धावस्थासे जर्जरित न हो, तथा इन्द्रियोंका समूह अपना २ विषय ग्रहण करनेमें सशक्त हो, और आयुष्य पूर्ण न हो तबतक सत्पुरुषोंको अपना हित साध्य करना चाहिये, जब तलाव फुट गया तब पाल कैसी बांधी जायगी ? ॥ इस भावनाका

सारांश यह है कि— सम्यक् प्रकार जड़ चेतनका भेद ज्ञान समझ लेना चाहिए" 'इन बारह भावनाओंसे निरंतर रमन हुए प्राणी शान्त इसी लोकमें रागादिककी बाधा रहित अलौकिक अविनाशी सुखको पाते हैं अर्थात् स्वयम् ज्ञानानन्दको पाते हैं॥

अब-निश्चय धर्म तो शुद्धात्मा निजस्वरूप ही है ॥ इति व्यवहार धर्मके दो भेद समाप्त ॥

व्यावहारिक धर्ममें अष्टांग योगकी साधना है। उसमें यम नियम, आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि यह आठ अंग हैं। व्यवहार धर्ममें श्रावक धर्मकी ग्यारह प्रतिमा है और मुनि धर्मकी बारह प्रतिमा है॥

अब श्रावक धर्मकी ग्यारह प्रतिमाओंका स्वरूप जानिए। सबका हितकारी है।

<u>प्रथम दर्शन प्रतिमा</u>

पंचुंबर सहियाइं सत्तवि वसणाइं जो विवज्जेइ ।
सम्मत्त विसुद्धमई सो दंसण सावओ भणिओ ॥ १ ॥

अर्थ— पाक्षिक नैष्ठिक और साधक इस प्रकार श्रावकके तीन भेद हैं। पाक्षिक श्रावक वह हो सकता है जो सबसे प्रथम श्री जिनेन्द्र देव प्रतिपादित सात तत्त्वोंका यथार्थ श्रद्धान करे। क्योंकि धर्मका मूल ही श्रद्धा है-विश्वास है। बिना विश्वासके धर्म पंथका अनुयायी हो नहीं सकता। इसका कारण एक यह भी है कि सुख-शांति और प्रेम ये तीनों धर्मके अङ्ग हैं और ये बिना विश्वासके यथार्थ नहीं हो सके हैं। इस लिये जिन आज्ञाको हृदयमें धारण करता हुआ कषायोंके घटानेके लिये सदाचारका पालन करे, कारण कि कषाय ही

प्रगट होनेमें अवरोधक है। पाक्षिक श्रावकका कर्तव्य 'जिनदर्शन १ जलगालन २ निशा भोजनत्याग, ३ पांच उदम्बर त्याग-बड़फल-पीपलफल-कठूमर-पाकर-फल-उदम्बर ४ मद्य त्याग ५ मधुत्याग ६ मांसत्याग ७ और जीव दया प्रतिपालन ८ ये आठ मूल गुणोंका पालन करता है। अभ्यासके लिये पांच अणुव्रत (हिंसा-झूठ-चोरी-कुशीलका त्याग और परिग्रहका परिमाण। तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत आदि व्रतोंका पालन करता है। जुआ खेलना मांसभक्षण, मद्य पान, शिकार खेलना, चोरी करना, वेश्या गमन करना परस्त्री सेवन करना ये सप्त व्यसनका उभय दोनु लोकमें दु:खदायक हैं यह समझकर त्याग करता है। जिस वस्तुका स्वाद फेर होता है, गंध भेद होता है त्रस जीवकी उत्पत्ति सम्भव हो ऐसा अभक्ष्यको सेवन नहीं करता है। बाह्य और अभ्यन्तर शुद्धिके लिये पूर्ण प्रयत्नशील होता है। षट् आवश्यक। देव पूजा १ गुरुउपासना २ स्वाध्याय करना ३ संयम पालन ४ तप धारण करना ५ और सुपात्रको दान देना ६ कर्मों को नियमित करता है। ये सब कर्तव्य पाक्षिक श्रावकके हैं। अविरति श्रावकको उपर कहे गये छ कर्तव्योंमेंसे चार कर्तव्यको (देवपूजन, गुरूपासना स्वाध्याय और दान करना पड़ता है।) और विरति श्रावक छ कर्तव्यको पालन करता है। ये सब कर्तव्य पाक्षिक श्रावकके हैं इन व्रत यम साथ धार्मिक नीति और व्यवहार नीति भी पालन करना चाहिये। सबसे प्रथम पाक्षिक श्रावकको २५ दोष रहित सम्यक् दर्शन निर्दोष पालन करना चाहिये।

नैष्ठिक श्रावक उक्त समस्त व्रत योंका पूर्ण रूपसे पालन करता है तथा सम्यग् दर्शनकी विशुद्धि विशेष रखता है। ग्यारह प्रतिमायें नैष्ठिक तथा साधक श्रावककी होती हैं। ६-७-८ प्रतिमा धारण करनेवालेको भी उक्त कर्तव्य पालने पड़ते हैं।

## दूसरी व्रत प्रतिमा

पंच अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावयाइं चत्तारि जाण विदियम्मि ॥ २ ॥

अर्थ- पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोंका नियमसे पालन करना है यह व्रत प्रतिमा धारण है।

पाणातिवायविरदी सच्चमदत्तस्स वज्जणं चेव।
थूलयड बंभचेरं इच्छाय गंथ परिमाणं ॥ ३ ॥

अर्थ- स्थूल हिंसा-झूठ-चोरी कुशीलका त्याग और परिग्रह परिमाण ये पांच अणुव्रत हैं।

जे तसकाइय जीवा पुव्वुद्दिट्ठा ण हिंसियव्वा।
ए इंदिय णिक्कारण ण पढम वयं थूलं ॥ ४ ॥

अर्थ- जो त्रसकाय जीव पहले कहे गये उनको नहीं मारना तथा बिना प्रयोजन एकेन्द्रिय जीवोंकी हिंसा नहीं करना सो प्रथम अहिंसाणु-व्रत है।

अलियं ण जंपणीयं पाणिवहकरं तु सच्चवयणं पि।
रागेण य दोसेण य णेयं विदियं वयं थूलं ॥ ५ ॥

अर्थ- राग द्वेष से असत्य वचन नहीं कहना और जिस वचनके कहनेसे किसी जीवकी हिंसा होती हो ऐसा सत्य वचन भी नहीं बोलना सो सत्याणुव्रत है।

पुरगामि पट्टणाइसु पडियं णट्ठं च णिहियवीसरियं।
तस्स होइ थूलवयं।

अर्थ– नगर, गाम और चौरा आदिमें पड़ा हुआ, भूला, हुआ, गिरा हुआ पराया अयवा ) द्रव्य नही लेना सो अचौर्याणुव्रत है।

> प-रेसु इत्थि सया अणगक्रीडा मयाविवज्ज ता ।
> थूलयड धमचारी जिणेहिं भणिओ पवयणम्मि ॥ ७ ॥

अथ– पवर दिनोंमें सवथा स्त्री मात्रका त्याग करना परस्त्री का सेवन नहीं करना, अनंग क्रोडा नही करना सो ब्रह्मचर्याणुव्रत है।

> ज परिमाण कोरइ धण धाण्ण हिरण्ण क चणाइण ।
> त जाण पचमवय, णिरि्ट्ठमुवासगाज्झयण ॥ ८ ॥

अर्थ– धन धा य र न सुवर्ण आदि परिग्रहणका परिमाण करना सो परिग्रहण परिमाण नामका अणुव्रत है। इस प्रकार ये पाच अणुव्रत हैं

> पु नुत्तरदक्खिणपच्छिमासु काउण जोयण पमाण ।
> परदो गमणणियत्ती, दिसि गुण वय पढम ॥ ९ ।

अथ– पूर्वोत्तरादि चारों दिशामें परिमाण कर उसके बाहर नहीं जाना सो प्रथम दिग्व्रत गुणव्रत है।

> वयभंगकारण होइ जम्मि देसम्मि तत्थणियमेण।
> कीरइ गमणणियत्ती, त जाण गुणव्वय विदिय ॥१०॥

अथ– दिग्व्रतके आभ्यतर दिशाओंकी मर्यादाकर बाहर नहीं जाना तथा जिन देशमें व्रतके भंग होनेकी संभावना हो ऐसे देशमें नहीं जाना सो द्वितीय देशव्रत नामक गुणव्रत है।

> अय दंड पास विक्किय, कूडतुला माणकूड परिमाण ।
> ज सण हो ण कीरइ तं जाण गुण्व्वय तिदिय ॥११॥

अर्थ–अनर्थदंड पापोपदेश, हिंसक दान दुःश्रुति, अपध्यान, और प्रमाद चर्या, भेदसे पांच प्रकार हैं। तथापि इसके अनन्त भेद होते हैं इन सबका यही अभिप्राय है कि जिस कार्योंसे कुछ प्रयोजन विशेष सिद्ध न होता हो और हिंसा तथा क्लेश परिणाम अधिक होते हों ऐसे लोहके शस्त्र, लाठी आदि हिंसाके व्यापार, झूठी तराजू खोटे बाट आदिसे व्यापारादिका त्याग करना सो तृतीय गुणव्रत है।

जं परिमाण कीरइ मंडण तंबुल गंध पुप्फाण।
तं भोयविरइ भणियं पढमं सिक्खावयं सुत्ते॥ १२॥

अर्थ– एकबार भोगनेमें आनेवाली चीजें–पान सुपारी, विलेपन करने योग्य पदार्थ गंधपुटी अत्तर तेल पुष्पहारादि वस्तुओंका परिमाण करना सो प्रथम भोगविरति शिक्षाव्रत है।

सगसत्तीए महिला वत्थाभरणं जं परिमाणं।
तं परिभोय णिवुत्ती, विदिय सिक्खावयं जाण॥ १३॥

अर्थ– बार २ भोगनेमें आवें अर्थात् जो वस्तु तीन चार भोगनेमें आवें उसे उपभोग कहते हैं। उपभोग रूप स्त्री वस्त्र, आभरण आदिक सेवन करनेका नियम करना सो दूसरा शिक्षाव्रत है।

अतिहिस्ससंविभागो, तिदियं सिक्खावयं मुणेयव्वं।
तत्थ वि पंचाहियारा, णेया सुत्ताण मग्गेण॥ १४॥

अर्थ– अतिथि संविभाग नामक तृतीय शिक्षाव्रत है, तथापि पांच अधिकार हैं सो शास्त्र मारगसे जानना। जिसने तिथि पर्व अष्टम्यादिकका त्याग है। सो अतिथि हैं। वह जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदसे तीन प्रकार है तीर्थंकर उत्तम और गणधरजी

मध्यम है और मुनि जघन्य है। अथवा। आचार्य उत्तम है उपाध्याय मध्यम है, और मुनि जघन्य है। अथवा निर्ग्रन्थ मुनि उत्तम है पुलाकलब्धिध मध्यम है, वकुश कुशील मुनि जघन्य है। अथवा मुनि उत्तम है, विरति श्रावक मध्यम है अविरति श्रावक जघन्य है। पात्रमें अन्न वस्त्र औषधी सब उपयोगी वस्तुका दान करना भी उत्तम है। तथा चैत्य चैत्यालय सिद्ध क्षेत्र शास्त्रादिमें दान देना भी उचित है

धरिऊण वत्थमेत्तं, परिग्गह छंडिऊण अवसेसं।
सगिहे जिणालये वा तिविहाहारस्स वोसरणं ॥ १५ ॥
जं कुणदि गुरु सयासे, सम्मालोइऊण तिविहेण।
सल्लेहणं चउत्थं, सुत्ते सिक्खावयं भणियं ॥ १६ ॥

अर्थ– वस्त्रमात्रको धारणकर, अवशेष परिग्रहका त्यागकर अपने घरमें अथवा जिनालयमें सल्लेखना धारण करे। सब कार्यसिद्धि समाधिमरणसेही होती है इतना ही नहीं किंतु समाधि मरण आत्मसिद्धिका अंतिम उपाय है–सुगतिका बीज है ॥ समाधि मरण विधि अतिचार रहित मरणके कारण उपस्थित होनेपर साम्यभाव और शांतिसे धैर्यपूर्वक, क्रोधादि विकार रहित शरीरका विसर्जन करना समाधि मरण है। और उसकी सिद्धिके लिये प्रथमें तीन प्रकारके आहारोंका त्याग कर गर्म जल अथवा तक्र (छाछ–मट्ठा) का सेवन करे और आवश्यकता होनेपर उसकाभी त्याग करे। अपनी पर्यायमें किये हुए भले बुरे कार्योंकी आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करे, पश्चात्ताप करे, और सबसे क्रोधादि विकार भावोंकी क्षमा मांगकर शांतिसे णमोकार मंत्रका ध्यान धरता हुआ शरीरको छोडे। यह चौथा सल्लेखना

न यह दिग्व्रत है। इस प्रकार दूसरी प्रतिमा धारण करनेवाला श्रावक इन बारह व्रतोंका पालन करता है।

## तीसरी सामायिक प्रतिमा

जिनवयण धम्म चेइय परमेट्ठि जिणालयाण णिच्चंपि।
जं वंदणं तियालं, कीरइ सामाइयं तं खु ॥ १ ॥

अर्थ– बाह्य और आभ्यंतर शुद्धिको धारणकर पूर्व अथवा उत्तर दिशाकी तरफ मुख करके, एकान्त निर्भय स्थानमें १२ आवर्तोंका करता हुआ ४ प्रणाम (दिशावर्ती चैत्य चैत्यालय मुनि आदिको) चारों दिशाओंमें कर और स्थिर मन वचन कायसे समता पूर्वक सामायिक करे। सामायिकमें कुटिलता ध्यान और चिन्ता छोड़ देनी चाहिये। जिन देव, जिन वचन जिन धर्म जिनालय और पंचपरमेष्ठीके गुणोंका चिन्तवन ध्यान वन्दना स्तुति आदि त्रिकाल करना सो सामायिक है। समताभाव रागद्वेष और इनके उत्पादक कारणोंका परित्याग करना सामायिक प्रतिमा है।

## चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा।

उत्तम मज्झ जहण्णं तिविहं पोसह विहाण मुद्दिट्ठं।
सगसत्तीए मासम्मि, चउस्सु पव्वेसु कायव्वं ॥ १ ॥

अर्थ– प्रोषधोपवास उत्तम मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकार है। उत्तम यह है कि जिसमें धारणा और पारणाके नियम पूर्वक उपवास करना–चारों आहारका त्याग करना इसमें समस्त प्रकारके आरंभका त्याग करदेना चाहिये। निर्भय होकर निःशल्यतापूर्वक पंच परमेष्ठीका ध्यान करना

चाहिये। मध्यम समस्त हिंसाद आरम्भ छोड़कर उपवास करनेसे होता है। जघन्य आम्ल अथवा एक अन्नकी ग्रहण कर स्वाध्यायादिसे शांति लाभ करता हुआ धर्मसेवन करनसे होता है। पर्व दिन पापधोपवास करना सो चौथी प्रतिमा है। अष्टमी चतुर्दशी तिथिमें पापधोपवास करना चाहिये।

पचमी सचित्त त्याग प्रतिमा।

जैयज्जो जदि हरिय तय पत्त पवाल कंद फल बीय।
अप्पासुग च सलिलं सचित्तणिविंत्तिम ठाण ॥ १ ॥

अर्थ-सचित्त वस्तु-हरित अंकुरपत्र फल कंद, बीज और अप्रासुक जलादि सेवन नहीं करता सो पंचम प्रतिमा है।

दिवा मथुन त्याग वा रात्रि भोजन त्याग छट्टी प्रतिमा[१]।
मण वयण काय कद कारिदाणुमोदेहिं मेहुण णवधा।
दिवसम्मि जो विवज्जदि गुणम्मि सो सावउ छट्ठो॥ १ ॥

अर्थ- मन, वचन, काया यह तीन योग और कृतकारित अनुमोदनासे नै प्रकारसे दिवा मैथुन सेवन नहीं करता सो छट्ठी प्रतिमा है।

सातमी ब्रह्मचारी प्रतिमा।

पुव्वुत्तण विधाणवि मेउण सव्वदा विवज्जंतो।
इत्थिकहादि णियत्ती सत्तमया गुण बम्भचारी सो ॥ १ ॥

अर्थ- त्रियोग त्रिकरणसे नव प्रकारसे यावज्जीव देवी-मानुष्य और तिर्यंचिणी स्त्री तथा नपुंसक साथ और हस्तकर्मादि मैथुनका त्याग शरीर विभूषा, अतिमात्राहार, रसोत्पादक स्त्रीकथादिका त्याग करना सो सातमी ब्रह्मचारी प्रतिमा है

१ जो दिवा मैथुनका त्याग न कर सका है सो रात्रि भोजनका त्याग करे॥

## आठमी आरंभ त्याग प्रतिमा

ज किंचि गिहारंभं बहु थोवं वा सया विवज्जेदि ।
आरंभणियत्तमदी सो अट्ठम सावओ भणिओ ॥ १ ॥

अर्थ- यत्किंचित-थोड़ा बहुत घर संबंधी आरंभ सदा त्यागता है सो आरंभत्यागी आठमी प्रतिमाधारी श्रावक है। घर संबंधी सर्वथा स्वयं आरंभ नहीं करना ही श्रेष्ठ है।

## दश परिग्रह त्याग नवमी प्रतिमा

मुत्तूण वत्थमेत्तं, परिग्गहं छंडिऊण अवसेसं ।
तत्थवि मुच्छं ण करेदि जाणि सो सावओ णवमो ॥ १ ॥

अर्थ- अपने जरूरी वस्त्रादिको रखकर बाकीके अन्य परिग्रहका त्याग करना तथा रक्खे हुए वस्त्रादिमें मूर्छा नहीं रखना सो दशपरिग्रह त्याग नवमी प्रतिमा है।

## अनुमती त्याग दशमी प्रतिमा

पुट्ठो वा पुट्ठो वा णिय गहि परेहिंसगिहकज्जे ।
अणुमणं जो ण करेदि वियाण सो सावओ दसमो ॥ १ ॥

अर्थ- कोई प्रश्न करे या न भी करे स्वयंके लिये या परके लिये अथवा अपना मतलबमें आरंभका कार्यमें अनुमति-आदेश नहीं देता है सो दशमी प्रतिमाधारक है।

## ग्यारमी उद्दीठ त्याग प्रतिमा

एयारसम्मि ठाणे उक्किट्ठो, सावओ हवे दुविहो ।
वत्थेग धरो पढमो कोवीण परिग्गहो बिदिओ ॥ ...

अर्थ ग्यारवा स्थानकमें उत्कृष्ट श्रावक दो प्रकारके होते हैं। एक कौपीनको रखनेवाला ऐलक और खद्दर विगैरे वस्त्र रखनेवाला क्षुल्लक श्रावक है इ दोकी क्रिया कर्म समान है।

तव वय नियमावासय लोच कारेदि पिच्छगिण्हेदि।
अनुवेहा धम्मझाण करपत्ते एक ठाणम्मि ॥ २ ॥

अर्थ– दोनों प्रकारके उत्कृष्ट श्रावक तप, व्रत नियम, संयम, ध्यान और प्रथमकी समस्त प्रतिमाएं सदाचार नियमसे पालन करता है। निर्दोष आहार एक समय पाणिपात्रमें लेता है। कषायोंका विजयी एकादश प्रतिमा धारक है।

इस प्रकार संक्षेपसे पाक्षिक नैष्ठिक और साधक श्रावकका सदाचार है। इस सदाचारके पालन करनेसे उभय लोककी सिद्धि होती है। इतना ही नहीं किन्तु यह सदाचार शांतिमय होनेसे राजभयादि रहित पूर्ण सुखकर सभ्य मार्ग है।

दशलक्षण व्रत विधि

माघ चैत्र और भाद्रो मासमें शुक्ल पंचमीसे पूर्णिमा तक दश दिन उपवास या आम्ल तप या एकासनसे यह तप होता है। पंचामृतका अभिषेक चौबीस भगवानको करना और पूजा अर्चा करनी, व्रतमें ब्रह्मचर्यका पालन करना, उत्तम दश धर्मका स्वाध्याय करना त्रिकाल सामायिक करनी भूमि शयन करना त्रिकाल जिन भक्ति करनी गुरु शास्त्रकी भी पूजार्चा करनी, सुपात्रमें दान करना दिवस रात्रि संबधि आलोचना प्रतिक्रमण करना णमोकार महामंत्रका ध्यान करना, यथाशक्ति मौन धारण करना प्रतिदिन समयसार जाप जपना यह विधि आराध्य दिनोंमें नियम करनेकी है। व्रत पूर्ण होते उद्यापन करना ज्ञान दर्शन

चारित्रकी वस्तुएं दश दश मन्दिरजीमें देनी शक्ति नहीं होवे तो दूना व्रत करना। यह आराधना मोक्षकी सीढी है

जाप तीनटंक मुताबिक करना।

दश दिवसोंके दश जाप्यमंत्र।

ॐ ह्रीं अर्हं मुखकमलसमुद्भूताय उत्तमक्षमाधर्मांगाय नमः ॥१॥
ॐ ह्रीं ,, ,, ,, उत्तम मार्दव धर्मांगाय नमः ॥२॥
ॐ ह्रीं ,, उत्तम आर्जव धर्मांगाय नमः ॥३॥
ॐ ह्रीं ,, ,, उत्तम सत्य धर्मांगाय नमः ॥४॥
ॐ ह्रीं ,, ,, उत्तम शौच धर्मांगाय नमः ॥५॥
ॐ ह्रीं ,, ,, उत्तम संयम धर्मांगाय नमः ॥६॥
ॐ ह्रीं ,, उत्तम तप धर्मांगाय नमः ॥७॥
ॐ ह्रीं ,, , उत्तम त्याग धर्मांगाय नमः ॥८॥
ॐ ह्रीं ,, ,, उत्तम आकिंचन्यधर्मांगाय नमः ॥९॥
ॐ ह्रीं ,, ,, उत्तमब्रह्मचर्य धर्मांगाय नमः ॥१०॥

प्रतिदिन बीस माला गिणनी चाहिए।

नोट- ज्ञानका उपकरण-रुमाल तथा या धनकी नाडी शास्त्र रखनेकी ठवणी उपदेशयंत्रके लिये आसन, लेखनी मसीपात्रादि १० दश वस्तु तथा दश शास्त्र शास्त्र भंडारमें या मुनिको तथा एलक क्षुल्लक आर्यिकादिको देना चाहिये चारित्र उपकरण पिच्छिका कमण्डलु और सुपात्र योग्य वस्तुएं दश दश उद्यापनमें धरकर पीछे जरूरी दार उन व्यक्तिको देनी चाहिए या मन्दिरजीमें रखनी चाहिए।

दर्शन उपकरण पूजन उपकरणकी सब सामग्री दश ----

थाल कटोरी दीपक पात्र, धूप पात्र अष्ट अगनादि द्रव्य दश वस्तुए उपकरणमें रखकर पाठ अगरी वाले मन्दिरजीमें पहोचादेनी चाहिये

### श्री मुनिराजको दान देनकी विधि

मुनिजीको दान करनेवाला श्रावक या श्राविकाको शुद्ध (दोषित) अन्न पानीका त्याग होना चाहिये। तथा अष्टगुण युक्त होना चाहिये। दान देने योग्य आहार पानीमें मरा कलेवर, कचा सचित्त फलादि चीजे रहनी नहीं चाहिये। मुनिजीकी नवधा भक्ति भाव श्वेताम्बर दिगम्बर भेद पड़ पीछेकी है सो करनो न करना यह व्यक्तिकी इच्छानुसार हो। मुनिजीको इसमें कदाग्रही न रहना चाहिये। श्वेताम्बर मुनि तो दाताके लिये बनाया हुआ आहार (कंदमूल बिनाका परिणत हुआ-बैंतालीस दोष रहित) ले लेते है। और पाच दोष भोजनके भोजन लेते समय टालते है। दान देने वालेको और दान लेने वालेको मोक्ष पुरुषार्थकी भावना रखनी चाहिये। मुनियोके लिये दूध दही आदि विकृतिवाला आहार त्याज्य है किन्तु हीन संघयणमें स्वाध्याय समिति आदि पालनके लिये जरुरी हो उतना विकृतिवाला आहार लेनेमें दोष नही है। बाकी संयम भावना ही सदा रहो ॥

### अथ देवाधिदेव पूजा।

दोहा।

प्रभु तुम राजा जगतके, हमें देय दुःख मोह।
तुम पद पूजा करत हूं, हमपै करुणा होहि ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोष रहित षट्चत्वारिंशद् गुणसहित श्री जिनेन्द्र भगवन् अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्री जिनेन्द्र भगवन् अत्रतिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्री जिनेन्द्र भगवन् अत्र मम सन्निहितो भवभव । वषट् ।

छंद त्रिभंगी ।

बहु तृषा सतायो, अति दुख पायो तुमपै आयो जल ल्याया ।
उत्तम गंगाजल, शुचि अति शीतल प्रासुक निर्मल गुन गाया ॥
प्रभु अंतरजामी त्रिभुवन नामी, सबके स्वामी दोष हरो ।
यह अरज सुनीजै, ढील न कीजै, न्याय करीजै दया धरो ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्री जिनेन्द्र भगवद्भ्यो जन्म मृत्यु जरा विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

भवतपत निरंतर, अगनि पटंतर मोउर अंतर खेद करयो ।
लै बावन चंदन दाह निकंदन, तुम पद वंदन हरष धर्यौ ॥ प्रभु ॥२॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्री जिनेन्द्र भगवद्भ्यो भवताप नाशाय चन्दनं निर्वप० ॥ २ ॥

औगुन दुखदाता, कह्यो न जाता, मोहि असाता, बहुत करै ।
तंदुल गुन मंडित अमल अखंडित, पूजत पंडित, प्रीति धरै ॥ प्रभु ॥३॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुण सहित श्री जिनेभ्यो अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वप० ॥ ३ ॥

सुर नर पशुको दल काममहाबल, बात करत छल माहि लिया ।
ताके शर लाऊं [illegible] भगति बढ़ाऊं ख्याल हिया ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्री जिनेभ्यः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपा० ॥ ४ ॥

सब दोषनमाहीं, जासम नाहीं, भूख सदा ही मो लागै ।
सद् घेवर बावर, लाडू बहुत धर, थार कनक भर तुम आगे ॥ प्रभु० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्री जिनेभ्यः क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपा० ॥ ५ ॥

अज्ञान महातम छाय रह्यो मम, ज्ञान ढक्यो हम दुख पावें
तम मेटनहारा तेज अपारा, दीप संवारा जस गावें ॥ प्रभु० ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्री जिनेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपा० ॥ ६ ॥

इह कर्म महावन भूल रह्यो जन शिव मारग नहिं पावत है ।
कृष्णागरुधूप अमलअनूप, सिद्धस्वरूप ध्यावत हैं ॥ प्रभु० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोष रहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्री जिनेभ्योऽष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपा० ॥ ७ ॥

सबतैं जोरावर, अंतरायअरि, सुफल विघ्न करि डारत हैं ।
फलपुंज विविध भर, नयन मनोहर, श्री जिनवर पद धारत हैं ॥
प्रभु० ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्री जिनेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्व० ॥ ८ ॥

आठों दुखदानी, आठ निशानी, तुम ढिंग आनी धारन हो ।
दीन निस्तारन, अधम उधारन, द्यानत तारन कारन हो ॥ प्रभु०
॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोष रहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्री-जिनेन्द्र भगवत्पदयोऽनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घं निर्वप० ॥९॥

## जयमाला

### दोहा

गुण अनंत को कहि सके छियालीस जिनराय ।
प्रगट सुगुन गिनती कहूं तुम ही होहु सहाय ॥ १ ॥

### चौपई ( १६ मात्रा )

एक ज्ञान केवल जिनस्वामी दो आगम अध्यातम नामी ।
तीन काल विधि परगट जानी चार अनंत चतुष्टय ज्ञानी ॥२॥
पंच परावर्तन परकाशी, छहों दरबगुनपरजयभासी ।
सात भंगवानी परकाशक, आठों कर्म महारिपुनाशक ॥३॥
नव तत्त्वन के भाखन हारे, दशलच्छन सौं भविजन तारे ।
ग्यारह प्रतिमाके उपदेशी बारह सभा सुखी अकलेशी ॥४॥
तेरह विधि चारित्रके दाता चौदह मारगनाके ज्ञाता ।
पंद्रह भेद प्रमाद निवारी सोलह भावन फल अविकारी ॥५॥
तारे सत्रह अंक भरत भुव, ठारे थान दान दाता तुव ।
भाव उनीस जु कहे प्रथम गुन, बीस अंक गणधरजीकी धुन ॥६॥
इक्कीस सर्वघाति विधि जानं, बाइस विध नवमे गुण थाने ॥
तेईस विधि अरु रतन नरेश्वर, सो पूजें चौबीस जिनेश्वर ॥७॥
नाश पचीस कषाय करी हैं देशघाति छब्बीस हरी हैं ।
तत्त्व दरब सत्ताइस देखे, मति विज्ञान अठाइस पेखे ॥८॥
उनतिस अंक मनुष सब जाने, तीस कुलाचल सर्व बखाने ।
इकतिस पटल सुधर्म निहारे, बत्तिस दोष समाइक टारे ॥९॥
तेतीस सागर सुखकर आये, चौंतिस भेद अलब्धि बताये ।
पैंतिस अच्छर जप सुखदा, छत्तिसकारन रीति मिटाई ⋯

सैंतिस मग क्षाहि ग्यारह गुनमें, अड़तिसपद लहि नाथ अपुनमें।
उनतालीस उदीरत तरम, चालिस भवन इन्द्र पूजें नम ॥१
इकतालीस भेद आराधन, उदै बियालिस तीर्थंकर भन।
तेतालीस बंध ज्ञाता नहिं द्वार चवालीस नर चौथे माहिं ॥१२
पैंतालीस पल्यक अच्छर छियालीस विन दोष मुनीश्वर।
नरक उदै न छियालिसमुनिधुन प्रकृति छियालिस नाश दशम गु
॥१३

छियालीस घन राजु सात भुव, अध छियालिस सरसा कहि धु
भेद छियालिस अंतर तपवर, छियालीस पूरन गुन जिनवर ॥१४॥

अडिल्ल।

मिथ्या-तपन निवारण चन्द्र समान हो,
मोहतिमिर वारनको कारन भान हो॥
काम कषाय मिटावन मेघ मुनीश हो,
'द्यानत' सम्यक रतन त्रय गुन ईश हो॥१०॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्री-
जिनेन्द्र भगवद्भ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपा०॥१०॥

(पूर्णार्घ्यके बाद विसर्जन करना चाहिए)

इति श्री जिनेन्द्र पूजा समाप्त।



## गुरुपूजा

### दोहा

चहुँ गति दुखसागर विषै, तारन तरन जिहाज।
रतन त्रय निधि नगन तन धन्य महा मुनिराज ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्योपाध्याय सर्वसाधुगुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर! संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री आचार्योपाध्याय सर्व साधुगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ।

ॐ ह्रीं श्री आचार्योपाध्याय सर्व साधुगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

### गीता छंद।

शुचि नीर निरमल क्षीरदधिसम, सुगुरु चरन चढ़ाइया।
तिहुँ धारतिहुँ गरद टार स्वामी अति उछाह बढ़ाइया॥
भव भोग तन वैराग धार, निहार शिव तप तपत हैं।
तिहुँ जगतनाथ अराध साधुसु पूज नित गुन जपत हैं।॥१॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्योपाध्याय सर्व साधु गुरुभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

करपूर चंदन सलिलसों घसी, सुगुरुपद पूजा करी।
सब पाप ताप मिटाय स्वामी धरम शीतल विस्तरी भव० ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्योपाध्याय सर्व साधु गुरुभ्यो भव ताप विनाशनाय चंदन नि० ॥२॥

तंदुल कमोद सुवास उज्जल सुगुरु पगतर धरत हैं।
गुनकार औगुन हार स्वामी वंदना हम करत हैं॥ भवभो ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्योपाध्याय सर्व साधु गुरुभ्योऽक्षयपद प्राप्तय अक्षतान् नि० ॥३॥

शुभ पुष्प राग प्रकाश परिमल सु गुरु पावन धरत हों।
निवार मार उपाधि स्वामी, शील दृढ उर धरत हौं ॥भव० ॥४॥
ॐ ह्रीं श्री आचार्योपाध्याय सर्व साधु गुरुभ्य कामबाण विध्वंसनाय पुष्प नि० ॥४॥

पकवान मिष्ट सलौन सुन्दर, सुगुरु पायन प्रीति सौं।
कर क्षुधा रोग विनाश स्वामी, सुथिर कीजे रीतिसौं ॥ भव ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री आचा ।पाध्याय सर्व साधु गुरुभ्य क्षुधारोग विनाशनाय नैवे० ॥५॥

दीपक उदोत सज्योत जगमग, सुगुरुपद पूजौं सदा।
तमनाश ज्ञान उजास स्वामी, मोहि मोह न हो कदा ॥भव० ॥६॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्याय सर्व साधु गुरुभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप निर्वपा० ॥६॥

बहु अगर आदि सुगंध खेऊं सुगुण पद पद्महिं खरे।
दुःख पुंज काठ जलाय स्वामी गुण अछय चितमें धरे ॥भव० ॥७॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्याय सर्व साधु गुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूप निर्वपा० ॥७॥

भर थार पूर बदाम बहु विधि सुगुरुक्रम आगधरौं।
मंगल महाफल करो स्वामी, जोर कर विनती करौं ॥भव० ॥८॥
ॐ ह्रीं श्री आचार्योपाध्याय सर्वसाधु गुरुभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फल निर्व० ॥८॥

जल गंध अक्षत पुष्प नेवज, दीप धूप फलावली।
'द्यानत' सुगुरुपद देहु स्वामी, हमहिंतार उतावली ॥भव० ॥९॥
ॐ ह्रीं श्री आचार्योपाध्याय सर्वसाधु गुरुभ्योऽनर्घपद प्राप्तये अर्घ्य निर्व० ॥९॥

## जयमाला।

दोहा।

कनककामिनी विषयवश, दीसै सब संसार।
त्यागी वैरागी महा, साधु सुगुन भंडार ॥१॥
तीन घाटि नव कोड़ सब, बन्दौं सीस नमाय।
गुन तिन अट्ठाईस लौं, कहूँ आरती गाय ॥२॥

छन्द बसरी।

एक दया पालैं मुनिराजा, रागदोष द्वै हरन परं।
तीनों लोक प्रगट सब देखैं, चारौं आराधन निकरं॥
पंच महाव्रत दुद्धर धारैं, छहों दरब जानैं सुहितं।
सात भंगवानी मन लावैं, पावैं आठ रिद्धि उचितं ॥३॥
नवों पदारथ विधिसौं भाखैं, बंध दशौं चूरन करनं।
ग्यारा शंकर जानैं मानैं, उत्तम बारह व्रत धरनं॥
तेरहभेद काठिया चूरे, चौदह गुन थानक लखियं।
महाप्रमाद पंचदश नाशैं, सोल कषाय सबै नशियं ॥४॥
बंधादिक सत्रह सब चूरे, ठारह जन्म न मरन मुनं।
एक समय उनईस परीषह, बीस प्ररूपनिमें निपुनं॥
भाव उदीक इकीसौं जानैं, बाइस अभख त्याग करं।
अहिमिंदर तेइसौं वंदैं, इन्द्र सुरग चौबीस वरं ॥ ॥
पच्चीसों भावन नित भावैं, छब्बिस अंग उपंग पढ़ैं।
सत्ताइसों विषय विनाशैं, अट्ठाइसों गुण सु बढ़ैं ॥६॥
शीत समय सर चौपटवासी, ग्रीषम गिरिसिर जोग धरैं।
वर्षा वृक्षतरैं थिर ठाढ़े, आठकरम हनि सिद्ध वरैं ॥६॥

दोहा।

कहाँ कहाँ लौं भेद मैं, बुध थोरी गुन भूर।
हेमराज सेवक हृदय भक्ति भरी भरपूर ॥७॥
ॐ ह्रीं श्री आचार्योपाध्याय सर्व साधु गुरुभ्यो अर्घं निर्व०।

इति गुरुपूजा समाप्त॥

## सरस्वती पूजा।

### दोहा।

जनम जरा मृत्यु छय करै, हरै कुनय जड़रीति।
भवसागर सों लै तिरै, पूजै जिन वच प्रीति ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती वाग्वादिनि! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती वाग्वादिनि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वति वाग्वादिनि! अत्र मम सन्निहिता भव भव वषट्।

### त्रिभंगी।

क्षीरोदधि गंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा, सुख संगा।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी, हित चंगा ॥
तीर्थंकरकी धुनि गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञान मई।
सो जिन वरबानी, शिवसुखदानी त्रिभुवन मानी पूज्य भई ॥१॥
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥
(शास्त्रजीके सामने शुद्ध जल एक कटोरीमेंसे दूसरी कटोरीमें चमचीसे डालना सो जल पूजा)
करपूर मंगाया चन्दन आया, केसर लाया रंग भरी।
शारद पद वंदों, मन अभिनंदों, पापनिकंदों दाह हरी ॥ तीर्थं०॥२॥
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥
सुखदास कमोदं धारक मोदं अति अनुमोदं चंदसमं।
बहुभक्ति बढ़ाई कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं ॥ तीर्थं० ॥३॥
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै अक्षतान् निर्वपा० ॥३॥

(यह विधि-स्नानादिसे पवित्र होकर, वेदिकापर शास्त्र रखकर इनके सामने करनी चाहिये। अष्ट प्रकार पूजनके द्रव्य पवित्र होना चाहिये। यह नोंध सब पूजन में जानी जाय) पीछे जयमाला खडे होकर या बैठे बैठे पढ़ी जाय

जयमाला।

सोरठा।

ओंकार धुनिसार द्वादशांग वाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करे जड़ता हरे॥

चाली।

पहला आचारांग बखानी, पद अष्टादश सहस प्रमानी।
दूजा सूत्रकृत अभिलाषं पद छत्तीस सहस गुरु भाषं ॥१॥
तीजा ठाना अंग सुजानं सहस बियालीस पद सरधानं।
चौथा समवायांग निहारं, चौंसठ सहस लाख इक धारं ॥२॥
पंचम व्याख्या प्रगपति दरशं, दोय लाख अट्ठाइस सहसं।
छट्ठा ज्ञातृकथा विसतारं, पांच (लाख) छप्पन हज्जारं ॥३॥
सप्तम उपासकाध्ययनंगं, सत्तर सहस ग्यार लख भंगं।
अष्टम अंतकृत दस ईसं, सहस अठाइस लाख तेईसं ॥४॥
नवम अनुत्तरदश सुविशालं, लाख बानवै सहस चवालं।
दशम प्रश्न व्याकरण विचारं, लाख तिराणव सोल हजारं ॥५॥
ग्यारम सूत्रविपाक सुभाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं।
चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरुशाखं ॥६॥
द्वादश दृष्टिवाद पन भेदं, इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं।
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्या हन हैं ॥७॥
इकसौ बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो।
ठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने ॥८॥

ऐरावत आठ हो लाख, सहस चुरासी छहसौ भाख।
.. इकीस तिगाक बतार, यक पद पद्मके जे मायें ॥९॥

घत्ता

.. अशोक ज्ञानमें, ईश लोय अलोक।
.. ' मन अवसर हो सदा देव हो धोक ॥१॥
ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वत्यै देव्यै महार्घ्यं निर्वपा० ॥९॥

इति सरस्वती पूजा।

卐

प नाथूराम प्रेमी कृत।

विसर्जन विधि।

दोहा

बिन जान या जानके रही टूट जा कोय।
तुम प्रसादतैं परमगुरु सो सब पूरन होय ॥१॥
पूजन विधि जानों नहीं, नहिं जानों आह्वान।
और विसर्जन हू नहीं क्षमा करो भगवान ॥२॥
मंत्र हीन धन हीन हू, क्रिया हीन जिन देव।
क्षमा करहु राखहु मुझे देहु चरणकी सेव ॥३॥
आये जो जो देवगन, पूजे भक्ति प्रमान।
सो अब जावहु कृपाकर, अपने अपने थान ॥४॥

॥ श्री ॥

॥ सामायिक करनेकी विधि ॥

गृहस्थके नित्यकर्म .. हैं, १ देवपूजा २ गुरुकी भक्ति, ३ स्वाध्याय, ४ संयम ५ तप, ६ दान करना सामायिक करना इन छह कर्मोंमेंसे तपका अन्तरंगतप है इसी लिये प्रत्येक गृहस्थको प्रतिदिन सबरेही पश्चात् दूसरी प्रतिमाधारियोंको सबेरे व शाम .. तीसरी प्रतिमाधारीको सुबह दुपहर व शाम

इस प्रकार कमसे कम ३ बार सामायिक करना चाहिये। उपवास व उपवासके पूर्व (पहिले) दिन इससे ज्यादा समय तक सामायिक करना चाहिये। सामायिकका काल (टाईम) निम्न प्रकार है। जघन्यकाल-दो घड़ी अर्थात् एक मुहूर्त। ४८ (मिनिट) का है। मध्यमकाल ४ घड़ी व दो मुहूर्त (१ घण्टा ३६ मिनिटका है) उत्तकृष्ट काल-छः घड़ी व ३ मुहूर्त (२ घण्टा २४ मिनिट) का है।

नोट– जो प्रतिमाधारी नहीं है (व्रती) है उनके लिये समयकी कोई मर्यादा नहीं है वो अपने अवकाश (समय) के अनुसार कम ज्यादा भी करसकते हैं।

सामायिक करनेका उत्तम-काल सवेरेका है सबेरे ४ बजे व सूर्योदयसे पहिले सदा (बख्तर) मे उठकर ही करना चाहिये। गृहस्थ यदि स्त्री सहवास आदिसे अपवित्र होतो हाथपांव धोकर व कपड़े बदलकर घरके किसी एकान्त स्थान (जहांकि डांस मच्छर आदिकी) कोई बाधा नहीं है। अथवा जिन मन्दिरजी व धर्मशालामें उत्तर व पूर्व तर्फ मुख कर कुशासन (चटाई) सादरी आदिपर बैठकर या सामायिक धारण करना चाहिये। तथा मन्दिरजीमें दिशाका कोई नियम नहीं है। क्योंकि मन्दिर मये देवोंमसे एक देव है व उसके सामने बैठकर सामायिक करना सर्वोत्तम है। इसलिये यहां जहां किसी प्रकारका अड़चन नहीं हो ऐसी जगह किदरभी मुंह करके सामायिक करनेका बैठ सकते हैं।

सामायिक करनेवाला पहिलेकी कुशासन (चटाई) पर सीधे खड़े होकर पांवके अग्रभाग ४ अंगुलका अंतर रखकर सरिखे दोनों हाथ लटका देवे (नीचे करदेवे) दृष्टिनासाके अग्रभागपर रखकर खड़ा होवे। अपने मनमें प्रतिज्ञा करे कि मैं इतने समयतक

सामायिक करूंगा या जबतक सामायिक क्रिया करूं तबतक मुझे इस स्थानके सिवाय अन्य स्थान व समस्त प्रकारके परिग्रहका सर्वथा त्याग है। फिर नमन ९ बार नमस्कार (णमोकार) मंत्रका उच्चारण करके साष्टांग नमस्कार करे। फिर खड़े होकर व बैठकर ३ बार नमस्कार मंत्र पढ़ हाथ जोड़कर जुड़े हुये हाथोंसे तीन आवर्त (चक्र) देकर जुड़े हुए हाथोंपर मस्तक रखकर शिरोनति करे। इसका मतलब यह है कि मैं मन वचन कायसे सामनेकी दिशा तरफके जितने कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्य (जिनमंदिर व सिद्धक्षेत्र) वगैरह हैं उन सबोंको नमस्कार करता हूं। इसी प्रकार आवर्त व शिरोनति दाहिने हाथ पर घूमते हुए करते हुए कि सामने आजाय। यदि मंदिरजीमें बैठकर सामायिकका काम पड़े तो चारों तर्फ दूसरे भाई सामायिक व स्वाध्याय आदि करते तब उनको पीठ लगती होता जिस तरफ मुख करके बैठे हों उसी तरफ ४ आवर्त ४ शिरोनति करे परन्तु समय धारणा (भाव दिशा ओर अलग रख कि समस्त दिशाके समस्त चैत्यालयों आदिको नमस्कार करता हूं। अथवा हाथोंका पहले आवर्तके बाद एक बार दाहिने हाथकी तरफ झुकाकर फिर पीछे नमस्कार करते समय माथेपर हाथ रखकर व चारोंबार दाहिनतरफ हाथ झुकाकर जुड़े हाथोंपर मस्तक रखकर शिरोनति करे।

इस प्रकार चारोंतरफ घूमनेमें १२ आवर्त व ४ शिरोनति करनेके पश्चात पहिले जिसतरफ मुंह करके बैठे हाथ जोड़े हो उसी तरफ मुखकमल व पद्मासनमें बैठकर शान्त चित्त होकर सामायिकका पाठ धीरे २ पढ़े जबानी याद न होतो पुस्तक सामने, रखकर अथवा समझता हुआ पढ़े॥

सामायिकपाठमें प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान, सामायिक स्तवन

बहुत व कायोत्सर्ग व ॥ कर्म है। प्रतिक्रमणमें भगवानके सामने अपने किये हुए पाप कार्योंका स्मरण करे व आलोचन (प्रार्थना) करता है। प्रत्याख्यानकर्ममें व व्यवहार भी प्रमादके वशीभूत होकर किये हैं जो मैं आपके पास अपनी निन्दा करके प्रार्थना करता हूं कि मेरे यह दोष मिथ्या होय। सामायिक कर्ममें समस्त जीवोंमें व उत्तम मध्यम समस्त पदार्थोंमें राग द्वेष छोड़कर समस्त जीवोंसे किये अपने अपराधोंकी क्षमा मांगकर समता भाव रखनेकी प्रतिज्ञा है चौथे स्तवन कर्ममें २४ तीर्थंकरोंको नमस्कार पूर्वक स्तुति (गुण प्रशंसा) करता हूं पांचवें वंदना कर्ममें अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामीकी प्रशंसा पूर्वक बारबार नमस्कार करता हूं। सो पाठ करते समय इन पांचों परमेष्ठीकी मूर्तिको नमस्कार करना चाहिये। और छट्ठा कायोत्सर्ग है सो पहलेकी तरह खड़े होकर शरीरसे ममता छोड़कर चारों दिशाओंमें ३-३-आवर्त व १-१-शिरोनति करे। इस प्रकार आदि व अन्तमें ४ आवर्त व चार शिरोनति करनेसे सबसे थोड़े समयकी सामायिक करना सो पूरा होजाता है। परन्तु इसमें थोड़ाही समय लगा है इसलिये ज्यादा समय शांतभाव रखनेके लिये इन समता रूप भावोंमें ही १-२ णमोकार मंत्रकी माला करलेना चाहिये। इसके सिवाय सामायिक शुरु करनेसे पहले आराधना पाठ जो प्रतिक्रमण ही है उसे पढ़लेना चाहिये। नमस्कार मंत्रकी माला फेरनेमें ज्यादा समय लगता होतो अथवा अन्यत्र पाठ पढ़ने होतो ३५ अक्षरी नमस्कार मंत्रकी जगह 'अरहंत सिद्ध' ६ असि आउसा' ५ 'अरहंत' ४ 'सिद्ध' २ 'ॐ' १ इनमें समयानुसार कोईभी जाप पढ़कर सामायिक कार्य पूर्ण करना चाहिये। इस प्रकार नित्य १ बार २ बार व ३ तीन बार

आलोचना पाठ सहित सामायिक करनेसे परिणामोंमें शान्ति रहती है। प्रमाद छूट जाता है प्रमाद ही महादुःखका कारण है।

इति सामायिक विधि समाप्त।

## आलोचना पाठ।

यह आलोचना पाठ सामायिक कार्यमें प्रथमकर्म प्रति-क्रमणकर्म है उस समय आदि शब्द तर्जमें बोलना चाहिये।

दोहा– वंदौं पांचों परमगुरु चौबीसों जिनराज।
करूं शुद्ध आलोचना शुद्धिकरनके काज॥१॥

सुनिये जिन अरज हमारी। हम दोष किये अति भारी॥ तिनकी अब निवृत्ति काज। तुम सरन लही जिनराज॥ २॥ इक बे ते चउ इन्द्री वा। मनरहित सहित जे जीवा॥ तिनकी नहिं करुणा धारी। निरदई ह्वै घात विचारी॥ ३॥ समरंभ समारंभ आरंभ। मनवचतन कीने प्रारंभ। कृत कारित मोदन करिकैं। क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं॥४॥ शत आठ जु इमि भेदनतैं। अघ कीने परछेदनतैं॥ तिनकी कहुं कोलों कहानी। तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥ विपरीत एकान्त विनयके। संशय अज्ञान कुनयके॥ वश होय घोर अघ कीने। वचतैं नहिं जाय कहीने।६॥ कुगुरुनकी सेवा कीनी। केवल अदयाकरि भीनी। याविधि मिथ्यात भ्रमायो। चहुगति मधि दोष उपायो ॥७॥ हिंसा पुनी झूठ जु चोरी। [1]पर वनितासों दृग जोरी॥ आरंभ परिग्रह भीनो। पनपाप जु या विधि कीनो ॥८॥ सपरस रसना घ्राननको। चखु कान विषयसेवनको॥ बहु करम किये मनमाने। कछु न्याय अन्याय न जाने॥९॥ फल पंच उदंबर

---

१ स्त्रीको '[illegible]' यु बोलना चाहिये।

खाये। मधु मांस मद्य चितलाये॥ नहिं अष्टमूल गुणधारी। सेये कुविसन दुखकारी॥ १०॥ दुइबीस अभख जिनगाये। सो भी निशदिन भुंजाये॥ कछु भेदाभेद न पायो। ज्यों त्योंकरि उदर भरायो॥ ११॥ अनंतानु जु बंधी जानो। प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो॥ संज्वलन चौकरी गुनिये। सब भेद जु षोडश मुनिये॥ १२॥ परिहास अरतिरति शोग। भय ग्लानि तिवेद संजोग॥ पनबीस जु भेद भये इम। इनके वश पाप किये हम। १३। निद्रावश शयन कराई। सुपनेमधि दोष लगाई। फिर जागी विषयवन धायो। नानाविध विषफल खायो १४॥ किये आहार निहारविहारा। इनमें नहिं जतन विचारा॥ बिन देखी धरी उठाई। बिन शोधी वस्तु जु खाई॥ १५॥ तब ही परमाद सतायो। बहुविधि विकलप उपजायो॥ कछु सुधिबुधि नाहिं रही है। मिथ्यामति छाय गयो है॥ १६॥ मरजादा तुमढिग लीनी। ताहूमें दोष जु कीनी॥ भिन भिन अब कैसें कहिये। तुम ज्ञानविषैं सब पइये॥ १७॥ हा हा! मैं दुठ अपराधी। त्रसजीवनराशि विराधी॥ थावरकी जतन न कीनी। उरमें करुना नहिं लीनी॥ १८॥ पृथिवी बहु खोद कराई। महलादिक जागा चिनाई॥ पुनि बिनगाल्यो जल ढोल्यो पखातैं पवन बिलोल्यो॥ १९॥ हा हा! मैं अदयाचारी। बहु हरितकाय जु विदारी॥ तामधि जीवनके खंदा। हम खाये धरि आनंदा॥ २०॥ हा हा! परमाद बसाई। बिन देखे अगनि जलाई॥ तामधि जे जीव जु आये। ते हू परलोक सिधाये॥ २१॥ बींध्यो अनराति पिसायो। ईंधन बिन शोधि जलायो॥ झाडू ले जागा बुहारी। चिंवटी आदिक जीव विदारी॥ २२॥ जल छानी जिवानी कीनी। सो हू पुनि डारि जु दीनी॥ नहिं जलथानक पहुंचाई। किरिया बिन पाप उपाई॥ २३॥ जल मल

मारिन दिखाया। कृमिकुल बहु घात करायो ॥ मर्दियन बिच नीर धुवाय। बाग़नके जीव मराये ॥२४॥ अग्न्यादिक दाघ कराए। तामें जु जीव निमराए ॥ तिनका नहीं जतन कराया। नदियाँ में धूप डराया ॥२५॥ पुनि द्रव्य कमावन काज। बहु आरंभ हिंसा साज ॥ कीये तिसनावश भारी। करुणा नहिं रंच विचारी ॥२६॥ ताका जु उदय अब आया। नानाविध मोहि सताया ॥ फल भुंजत जियडु न पाये बचनें कैसे करि गाये ॥२७॥ तुमजानत केवलज्ञानी। दुःख दूर करो शिवथानी ॥ हम तो तुम शरण लही है। जिन तारनविरद सही है ॥२८॥ जो गांवपती इक होवे। सो भी दुखिया दुःख खोवै ॥ तुम तीन भुवनके स्वामी। दुःख मेटहु अंतरजामी ॥२९॥ द्रोपदिका चीर बढ़ायो। सीतापति कमल रचायो ॥ अंजनसे किये अकामी। दुःख मेटो अंतरजामी ॥३०॥ मेरे अवगुन न चितारो। प्रभु अपनो विरद सम्हारो ॥ सब दोषरहित करि स्वामी। दुःख मेटहु अंतरजामी ॥३१॥ इन्द्रादिक पदवी न चाहूं। विषयनिमें नाहिं लुभाऊं ॥ रागादिक दोष हरीजे। परमातम निजपद दीजे ॥३२॥ दोहा—दोषरहित जिनदेवजी निजपद दीज्यो मोय। सब जीवनके सुख बढ़े आनंद मंगल होय ॥ अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरी' आप जिनंद। ये ही वर मोहि दीजिये चरनशरन आनंद ॥ इति ॥

उपदेशक-भव्य विभूति
सपादक मुनि चम्पकसागरजी म

समय की गति

हमारा प्रत्येक पग श्मशान भूमि की ओर जा रहा है प्रत्येक श्वास में आयु कम हो रही है मृत्यु निकट आ रही है और प्रतिक्षण शक्ति क्षीण होती जा रही है फिर भी हम

समझते हैं कि हम बढ़ रहे हैं। जब कोई व्यक्ति किसी २० वर्ष के युवक से पूछता है कि भाई! तुम कितने बड़े हो? तो इसके उत्तरमें वह ये नहीं कहता कि मैं २० वर्ष छोटा हो गया हूँ क्योंकि मेरी आयुके २० वर्ष कम हो गये हैं।' वह तो ऐसा ही समझता और कहता है कि मैं २० वर्ष का हूं। लोक प्रचलित ऐसी समझ और ऐसा उत्तर कितना गलत है इसको प्रत्येक बुद्धिमान समझ सकता है।

लोग समझते हैं कि 'समय बीतता है।' वे यह नहीं समझते कि समय तो गतिमान द्रव्य है, वर्तमानरूप उसकी गति क्रिया न कभी रुकी और न कभी रुकेगी इसलिए वह क्या बीतता है, बीतते तो हम हैं। कभी माता के गर्भ-में थे कभी पेटसे बाहर आये कभी शिशु थे कभी किशोर हुए और कभी युवक आदि, हमारी कोई भी दशा कायम नहीं रही फिर भी हम अपनी दशा को न देखकर समय को ही बीतने वाला समझ लेते हैं।

भर्तृहरि ने कितना सुन्दर कहा है —

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता तपो न तप्तं वयमेव तप्ता।
कालो न यातो वयमेव याता, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा ॥१॥

अर्थात्- हमने भोग नहीं भोगे बल्कि भोगोंने ही हमको भोग लिया, (विषय भोगों में मनुष्यका बल वीर्य क्षीण हो जाता है)। तप हमने नहीं तपे किंतु तपों ने हमको तपा दिया। देखा जाता है कि मनुष्य तपस्या का बाहरी रूप लेकर अपने कषाय शान्त करने के बजाय उनको उग्र कर लेते हैं जिससे जन साधारण की अपेक्षा उनमें क्रोध मान की मात्रा अधिक दीख पड़ती है। काल नहीं बीता, हम ही बीत गये, सो ठीक ही

रहा है कि काल की गति तो यहीं चल रही है। यह तो कभी नष्ट नहीं हुई किन्तु मनुष्योंकी आयु अवश्य नष्ट हो रही है। तथा हमारी तृष्णा जीर्ण नहीं होती-नहीं गलती हम ही जीर्ण हो रहे हैं। प्रत्यक्ष दीखता है कि वृद्धा अवस्था में शरीर तो जीर्ण हो जाता है परन्तु मृत्यु के द्वार पर पहुँचे हुए बुड्ढे बाबा का मोह लोभ पहले से भी अधिक तीव्र हो जाता है, मानो यह सारे संसारका धन और पुत्र आदि को अपने साथ ही ले जायगा।

इस तरह भर्तृहरिने इस श्लोकमें मनुष्य जीवनका रहस्य और मर्म खोलकर रख दिया है।

मनुष्य अपने अमर आत्माका महत्व भूलकर जिस भौतिक शरीर पर मोहित हो रहे हैं उसके विषय में आचार्य वादीभसिंहने संक्षेपमें कह दिया है कि –

जलबुद्बुद नित्यत्वे विस्मयो नहि तत्क्षये।

अर्थात्- पानीका बबूला जितनी देर ठहरा रहे उतनी देर का आश्चर्य करना चाहिये उसके नष्ट होनेका कुछ आश्चर्य नहीं है। यह भौतिक शरीर जल के बबूले के समान है जब भी यह नष्ट हो जाय उसमें क्या आश्चर्य की बात है।

लोग कहते है कि अभि हमारी उम्र नहीं, कुछ खा पीलें, मौज शौक करले संसारके विषय भोगले, कुछ रंग-रलियाँ करले, बड़े हो जाने पर त्याग करदेंगे, धर्म करलेंगे, दीक्षा ग्रहण करेंगे।' किन्तु उन्हें सब कुछ देखते हुये भी यह विश्वास कैसे हो गया कि धर्म करनेके लिये वे जिस वृद्ध अवस्थाको सोच रहे हैं, उस वृद्ध अवस्था तक वे पहुँचे

पोवेंगे भी ? हम देखते है कि पिता बैठा रहता है पुत्र मृत्युका शिकार हो जाता है। भारतवासियोंकी औसत आयु ३२ वर्ष की रह गई है तब धर्म करनेके लिये वृद्ध अवस्थाकी बात सोचकर विषय भोगों में ही समय नष्ट करना भारी भूल है।

मृत्युका निश्चित समय किसीको मालूम नहीं बलवान जवान आदमी भी बैठे बैठे परलोकको कूच कर जाते है गर्भमें ही बहुतसे मरजाते है बच्चोंकी मृत्यु-सख्या युवक मनुष्यों से अधिक है और साथ वृद्ध मनुष्यों की अपेक्षा आजकल व युवक अधिक सख्या में मौत क मेहमान बनते है। तब आत्मकल्याण के लिये वृद्ध अवस्थाकी बात सोचना अज्ञानता है।

राम लक्ष्मण क प्रेम की परीक्षा लेन क लिये एक देवन कपट वेषमें लक्ष्मणको झुठ-मुठ यह कह दिया क राम की मृत्यु हो गइ है। इतना सुनते ही महान् बलवान् नारायण पदधारक लक्ष्मणका हार्टफेल हो गया। महाबली शरीर नारायण कृष्णका शक्तिशाली (शरीर) जरत्कुमार क एक ही बाणसे समाप्त हो गया। ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं को जानते हुये भी हम यह सोचते है कि अभि खा पीले, बुढापेमें आत्मकल्याण कर लेंग।'

मनुष्य जिस सम्पत्तिके लिये मूल्यवान जीवनकी बाजी लगा रहे है जिस धन क नशेमें उसे कार्य अकार्य, अर्थ अनर्थ नजर नहीं आता थोडी सम्पत्ति पाकर भी अभिमानमें चूर होकर पैर जमीनपर नहीं रखता अपने सामने दूसरोंको कुछ नहीं समझता दूसरोंका अपमान करते दीन दुखलको सताते हुये सकोच नहीं करता, और पता नहीं क्या क्या कुछ करण ताने बाने तानता रहता है उस धनकी हालत तो शरीर से भी अधिक गई बीती है।

प्राचीन घटनाओं पर शायद कोई विश्वास न करे किन्तु इन ४०-५० वर्ष के भीतर हम भौतिक सम्पत्तिके कितने पलटे खाये हैं यह तो सब किसीको मालूम है। १३००-१४०० वर्ष पुराने चीन के राजवंशकी रूस के ज़ार की और समशेर जंगकी राज्य सम्पत्ति किस तरह उनके हाथसे छिन गई भारत वर्ष के सम्पत्ति शाली निजाम और राजे महाराजोंकी सम्पत्ति छिनते कितनी देर लगी? पाकिस्तान बनने पर पंजाब सिन्ध के धनिक किस प्रकार दरिद्र हो गये जमींदार और जागीरदारोंकी सम्पत्ति किस तरह खत्म कर गई उनका तो हम सबने अच्छी तरह देखा है फिर भी हम धनका अभिमान करें कितनी भूल है।

कविने इस विषयमें बतलाया है-

विद्युच्चलं किं धन यौवनायुर्दानं परं किं च सुपात्रदत्तम्।
कण्ठगतैरप्यसुभिर्न कार्यं किं किं विधेयं मलिनं शिवार्चा ॥१॥

अर्थात्- बिजलीकी चमक की तरह चंचल क्या है? धन, यौवन और आयु। दान क्या है? सुपात्रको दिया गया अपने द्रव्यतानुसार द्रव्य। प्राण जाते हुए भी क्या न करना चाहिये? पाप कार्य और प्राण कंठगत होते हुए भी क्या करते रहना चाहिये? भगवान की पूजा।

ऐसे चंचल धनका न तो विश्वास करना चाहिये और न कुछ अभिमान ही करना चाहिये।

मनुष्य को अपनी आयु के प्रत्येक क्षणका तथा अपनी सम्पत्तिके प्रत्येक कणका सदुपयोग करना चाहिये आत्मकल्याण तथा परकल्याणका कार्य करनेमें ज़रा भी विलम्ब न करना चाहिये। किन्तु देखा यह जाता है कि विषय भोगोंके चिकने जाल से विरलाही मनुष्य बच पाता है।

एक राजाने अपने महलके बाहर बहुत सुन्दर बाग बनवाया और उस बागमें मनुष्योंका मन लुभानेवाली सभी भोग उपयोगकी सामग्रीका संचय किया। सुन्दर फुलवाड़ी, मनोहर जलक्रीडाका सामान, आराम करनेके विविध पलंग, आसन, नृत्य गानकी मनमोहक योजना, स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों का संग्रह आदि पांचों इन्द्रियोंको अपनी ओर आकर्षित कर लेनेवाली सभी सामग्री जुटा दी।

फिर मनुष्योंकी कर्तव्य-परायणताकी जांच करनेके लिये उस राजाने घोषणा करायी कि दो घंटे समयमें जो मनुष्य सबसे पहले मुझसे भेंट कर लेगा उसको अपना राज्य पारितोषिकमें दे दूंगा।

राजाकी घोषणा सुनकर अनेक मनुष्य राजभवनकी ओर चल पड़े किन्तु ज्यों ही वे उस बागमें पहुंचे तब घोषणाकी बात भूलकर कोई नर्तकीका नृत्य देखनेमें कोई सुरीले गायन सुननेमें, कोई जलक्रीड़ामें मग्न हो गया, उन्होंने सोचा कि थोड़ी देर पीछे राजासे मिल लेंगे। केवल एक ही बुद्धिमान मनुष्य उस बागके माया मोहमें न फंसा और बागको पार करता हुआ सीधा राजाके पास जा पहुँचा।

राजाने उसकी कर्तव्य-तत्परताका अच्छा सन्मान किया और उसे अपना राज्य दे दिया बाकी विषय भोगोंमें मस्त थे मनुष्य दो घंटेमें भी सचेत न हो पाये तब राजकर्मचारियोंने उन्हें धक्के देकर-बागसे बाहर निकाल दिया।

ऐसी ही दशा रागी भोगी मनुष्योंकी है वे विषयभोगोंमें फंसकर आत्म हितकी यानी धर्म साधनकी बात भूल जाते हैं,

आयु कर्म जब धक्का देकर उसे इस मानव शरीरसे निकाल बाहर करता है तब वे पछताते हैं।

धन परिग्रहके संग्रहमें वे इतने तन्मय हो जाते हैं कि अपने आत्माका हित करनेकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता।

सेठजीको फिक्र थी एक एक के दस दस कीजिये।
मौत आ पहुँची कि हज़रत जान वापिस कीजिये॥

सिनेमा इस युगका एक बड़ा विषैला साधन है सिनेमा के चलचित्र ऐसे बुरे ढंगसे तैयार किये जाते हैं कि उनको देखनेवाले पुरुष हिंसा चोरी व्यभिचार बिना सिखाये सीख जाते हैं स्त्रियाँ निर्लज्ज पहनना ओढ़ना तथा शृंगार करना सीख जाती हैं जिन बच्चोंको अपना प्रगतिशील गुणी सदाचारी जीवन बनानेकी शिक्षा मिलनी चाहिये उन्हें सिनेमा उद्दण्डता, दुराचारकी वासनाओंको और ही अधिक प्रेरणा देता है। लोगोंको आकर्षित करनेके लिये अभिनेत्रियोंके निर्लज्ज हाव-भाव भरे चित्र आम सड़कों पर सिनेमा-मालिक दिखलाते फिरते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि जिन लोगोंको पेटभर भोजन नहीं मिलता ऐसे गरीब बेरोजगार भी सिनेमा देखनेके लिये अवश्य जा पहुँचते हैं।

इस तरह भारतकी आर्य सभ्यता इस युगमें निर्लज्जता कामुकता निर्दयता आदि दूषित प्रभावोंसे मलिन होती जा रही है और स्त्री पुरुषोंका सामाजिक जीवन भी धर्मशासनसे बाग़ी होता जा रहा है। जो व्यक्ति अपने घरमें सदाचार सुरक्षित रखना चाहते हैं उनको अपने परिवारमें [illegible] व्यसन नहीं आने देना चाहिये।

शुभस्य शीघ्रम्

अपनी आयु और शरीर अस्थिर नश्वर और कुछ दिनका अतिथि समझकर इस थोड़ेसे समयमेंभी अपने शरीरसे, मनके अच्छे विचारोंसे तथा मीठे वचनोंसे एवं प्राप्त हुये धनसे जनताका यथा सम्भव उपकार करना चाहिये, दीन दरिद्र दुखी लोगोंके कष्ट दूर करने चाहिए। परोपकार करनेवाला व्यक्ति शुभ कर्म संचय करके अपना उपकार भी साथ ही साथ करता जाता है। इसलिये सदा खोटे आगत बुरे कार्योंसे बचो और अच्छे कार्य करनेमें अगाड़ी दूर न करो पता नहीं फिर तुम कर सको या न कर सको।

संसार के दो रूप

संसारमें जीव अनेक प्रकारकी आकुलताओंसे दुखी है अनेक तरहकी चिंताओंसे सदा चिंतित रहता है अनेक प्रकारके भय इसको भीत बनाए रहते हैं भूख प्यासकी बाधा इसको सताती रहती है और जन्म मरणकी व्याधि इसका कभी पीछा नहीं छोड़ती। जैसे जन्म अंध मनुष्यको किसी ऊबड़ खाबड़ भूमिमें चलना पड़े तो उसे पग पग पर ठोकरें पड़ती हैं उसी तरह इस आत्म ज्ञानसे शून्य संसारी जीवको मोहके गहन अंधकारमें नरक पशु आदि विविध योनियोंमें भटकना पड़ता है। जिस तरह कोल्हुका चलानेवाला बैल दिन भरमें २० मील चल लेता है किंतु रहता वहींका वहीं है वह से १० गज भी आगे नहीं बढ़ पाता, उसी तरह संसारी जीव असंख्य योजनोंकी यात्रा कर चुका है परन्तु संसारके चक्रसे छूट नहीं पाया, वहींका वहीं खड़ा है।

जैसे कोई अन्धा मनुष्य मीलों लम्बे चौड़े परकोटेमें

भ्रमण रहा है जिसमें कि मयल यक ही द्वार यहार निकलनेका बना हुआ है यह बेचारा अ धा दीवालके सहारे हाथोंसे टटो लता हुआ उस परकोटेका चक्कर लगाता है चक्कर लगाते लगाते जब यह द्वार आता है तब दुर्भाग्यसे उसको कभी खुजली हो उठती है जिसको खुजानेके लिये चलता हुआ ज्यों ही हाथ उठाता है कि वह द्वार निकलजाता है फिर सारा चक्कर लगाना पड़ता है कभी उसी द्वारके आनेपर छातीमें पीड़ा होने लगती है तब टटोलनेवाला हाथ छाती पर जा लगता है समीप आया हुआ द्वार छूटजाता है, फिर उसे सारा चक्कर लगाना पड़ता है। जब घूमते २ सौभाग्यसे द्वार पुन पासमें आता है तब दुर्भाग्यसे उसकी छाती खुजने लगती है चलते २ ज्योंही टग लनेवाले हाथसे छातीको सम्भालता है कि द्वार फिर निकल जाता है इसी तरह जन्मभर चक्कर लगाते २ बेचारा उस परकोटेसे बाहर नहीं हो पाता। इसी तरह ससारी जीवको बन्दीगृह ( जेल ) में चक्कर लगाते २ यह मनुष्य भव ऐसा मिलता है जिसके द्वारसे वह ससारके बन्दी घरसे बाहर निकल सकता है किन्तु उस समय वह परिवार मित्र परिकर धन सपत्के मोहमें आकर अपना समय बिता देता है मनुष्यभव गया कि ससार जेलसे निकलनेका द्वार भी जीवके हाथ निकल गया। जब कभी सौभाग्यसे मनुष्यका शरीर मिला तब फिर पुत्र मोह शत्रु द्वेष कन्याके जीवनकी चिन्ता दरिद्रतासे युद्ध आदिमें फसकर उस सुवर्ण अवसरसे लाभ नहीं ले पाता।

इस सासारिक भ्रमणका मूल कारण राग-मोह है। मोहमें मोहित होकर इस जीवका विवेक अकमण्य हाजाता है, विवेक जब कुछ कार्य नहीं करता है तब अविवेकसे यह जीव अपने आपको नहीं पहचान पाता जड़ शरीरको ही आत्मा समझ

बैठता है। चाहे भी कार्य, वह चाहे लौकिक हो, अलौकिक हो श्रद्धा ज्ञान आचरण के बल पर सिद्ध होता है। किसी रोगीको यदि रोगसे छुटकारा पाना है तो उसे वैद्य तथा औषधि पर दृढ़ श्रद्धा होनी चाहियेकि 'इसके द्वारा मैं नीरोग हो जाऊँगा' उसे औषधि सम्बन्धी ज्ञान होना चाहिये कि अमुक औषधि पीनेके लिये है और अमुक औषधि मालिशके लिये है और इसीके साथ औषधि का सेवन करना आवश्यक है, इन तीनों प्रक्रियाओंसे रोगी रोग मुक्त हो जाता है।

संसार-भ्रमण या जन्म मृत्युके रोगसे मुक्ति पानेके लिये भी जीवको इसी प्रक्रियाको ठीक तरहसे अपनाना पड़ता है। ज्ञान और आचरण पर तमाम उत्तरदायी श्रद्धा है, श्रद्धाके अनुसार ही ज्ञान आचरण स्वयं चल पड़ते हैं। किसी मनुष्य के हृदयमें यह श्रद्धा-विश्वास घर कर जाय कि दूध मुझे हानि करता है तो दूध के विषयमें उसकी विरोधी विचारधारा चल पड़ेगी, वह प्रत्येक तरहसे दूधको दुखदायक विचारने लगेगा और लाखों यत्न करनेपर भी वह दूधका पीना स्वीकार न करेगा।

इसी तरह संसारी जीवकी श्रद्धा अपने शरीर पर जमी हुई है, उसे विश्वास है कि देह अपनी ही एक चीज है पराई नहीं है। सुख दुख हर्ष शोक लाभ, हानि मुझे शरीरसे ही प्राप्त होती है, एक क्षण भी शरीर बिना मैं कुछ नहीं कर सकता अतः शरीर रूप ही मैं हूँ। ऐसा दृढ़ श्रद्धा संसारी जीवकी अपने शरीरके साथ है। इसी श्रद्धा के अनुसार उसका ज्ञान उन व्यक्तियोंको अपना मित्र मानकर समझता है जो इनके शरीरको कुछ लाभ पहुँचाते है। और जिन प्राणियोंसे इसके शरीरको रंचमात्र भी क्षति पहुँचती है उनको अपना शत्रु

समझ लेता है। जिन वस्तुओंसे शरीरको कुछ लाभ अनुभव होता है उनको प्रिय, और जिन चिजोंसे इस अपने शरीरकी हानि जान पडतीहै उन्हें अप्रिय समझ लेताहै। अपनि उसी श्रद्धाके अनुसार समझ हुये मित्रोंसे प्रेम करता है और शत्रु मान हुए लोगोंसे वैर बांधकर उनसे लडता झगडता है। प्रिय वस्तुओंका संग्रह करता है, अप्रिय वस्तुओंको दूर हटा देता है। तोड फोड डालता है।

इसी प्रेम वैर के आधार पर जीव संसारके सभी कार्य किया करता है। इस कारण संसारका मूल शरीरमें आत्माकी श्रद्धा ही है। यह श्रद्धा सत्य श्रद्धा नहीं है क्यों कि शरीर तो एक तरह संसारी जीवका कुछ समयके किराये पर लिया हुआ एक घर है। नियत समयके बाद यह किरायेका मकान जीवको नियमसे खाली करना पडता है। इस दशामें यह शरीर जीवका अपना पदार्थ किस तरह बन सकता है अतः शरीरमें आत्माकी श्रद्धाको श्रद्धा न कहकर कुश्रद्धा या मिथ्या श्रद्धान कहना चाहिये। इससे यह बात सिद्ध होती है कि संसारी जीवको संसारकी जेलमें रखनेवाला कोई और नहीं है, इसीके हृदयमें जमी हुई मिथ्या श्रद्धा ही इसको संसार जेलसे बाहर जाने नहीं देती।

अपनी उस कुश्रद्धाके आधार पर ही जीव शरीरके साझेमें संसारका व्यापार कर रहा है आत्मा शरीरको अपनी इच्छा अनुसार चलाता है, आवश्यकतानुसार आत्मा जब शरीरको दौडने, भार उठाने, सर्दी गर्मी वर्षामें कार्य करने, कठिन परिश्रम करने आदिका संकेत (इशारा) करता है शरीर वैसा ही करता है, और शरीर आत्मासे अपने लिये जैसे वस्त्र,

आभूषण, तेल उबटन, भोजन तथा अन्य पोषण विभावके पदार्थ मांगता है आत्मा व पदार्थ शरीरको प्रदान करता है। इस तरह शरीर तथा आत्माका साझा संसारमें अनादिकालसे चला आ रहा है। इसी साझेके कारण आत्मा शरीरको अपना ही समझ बैठा है, इतना ही नहीं बल्कि शरीरके मोहमें मूर्छित होकर स्वयं अपनी शुद्ध बुद्ध भूल बैठा है। शरीरके कारण ही माता, पिता पुत्र, स्त्री, भ्राता आदि विविध व्यक्तियोंके साथ विविध संबंध स्थापित करलेता है।

इसी मोहभावके कारण आत्मा अपने बंधनके लिये कर्म बंध स्वयं तैयार करता है कर्मका बंधन होता तो पौद्गलिक है किन्तु आत्माके मोह मय भावोंके प्रभावसे वे जड़ कर्म भी मोह-उत्पादक प्रभावसे प्रभावित होजाते हैं, जिससे समय आने पर उदयके समय मोह कर्म आत्मा पर मोहका प्रभाव डालता है। जैसे कोई शराबी स्वयं नशीली शराब तैयार करता है और जब वह उस शराबको पीता है तब वह शराब उस मनुष्यको अपने प्रभावसे मूर्छित कर देती है। इसी तरह संसारी जीव शारीरिक मोहके कारण अपने भावोंसे कर्म बंधन करता है और वह कर्म बंधन इस जीवको अपने प्रभावसे विकृत कर देता है। इस तरह भाव कर्म से द्रव्य कर्म और द्रव्य कर्म से भाव कर्म बनता रहता है, कर्म बंधनकी परम्परा चलती रहती है। कर्म बंधका मूल कारण वह एक मिथ्या श्रद्धा ही है जिसके कारण जीव अपने अनुभवसे दूर रहा आता है शरीरमें अपना पन ग्रहण किया करता है। किन्तु शरीर निजी वस्तु नहीं न सदा आत्माके साथ वह रहता है, कभी उत्पन्न होता है कभी नष्ट होता है कभी बढ़ता है, कभी घटता है, अतः आत्मा शरीरमें अपनापन मानकर कभी

सन्तुष्ट, शान्त, सदा सुखी नहीं बन सकता है, किन्तु सदा व्याकुल बना रहता है।

यदि कभी आत्माकी सौभाग्यसे किसी सद्गुरुका समागम हो जाता है, तो वे दयालु होकर इस मोही संसारी जीवको अपने परमहित उपदेशसे सावधान करते हैं कि 'जिस सुख शान्तिके लिये तू बहार भटक रहा है उस सुख शान्तिका अथाह सागर तो तेरे भीतर (शरीरमें नहीं आत्मामें) हिलोरें ले रहा है। कस्तूरी हिरणकी नाभिमें कस्तूरी होती है उसकी मादक सुगन्धिमें वह हिरण मस्त हो जाता है किन्तु भ्रमसे वह उस सुगन्धिको अपने भीतरकी न समझकर बाहरकी अन्य वस्तुओंकी समझता है, अतः इधर उधर दौड़ता फिरता दूसरी २ चीजोंको सूंघता २ थक जाता है किन्तु उसकी इच्छा तृप्ति नहीं हो पाती। वैसेही दशा तेरी है। अतः बाहरकी ओरसे अपनी विचारधारा हटाकर अपने अंतरंगकी ओर सन्मुख हो अन्तर्मुख होनेपर ही तुझे शान्ति प्राप्त होगी तेरी आकुलता दूर होगी और तेरी परतन्त्रता बंधन ढीले होंगे। तेरे भीतर अपार अक्षय निधि भरी हुई है तू अपने आपको दीन-हीन क्यों समझ रहा है, एक बार अपनी ओर देख तो सही।"

दीनबन्धु पतितपावन एवं तरनतारन अपने सद्गुरुकी हितवाणीको सुनकर जब इस जीवकी मिथ्या श्रद्धामें परिवर्तन आता है जब इसके हृदयमें आत्म-श्रद्धा जागृत होती है तब मिथ्या श्रद्धाका जनक (उत्पादक) मोहनीय कर्म स्वयं इस प्रकार दूर होजाता है जिस तरह विस्तृत खुले मैदानमें सूर्य उदय होनेपर रातका अंधेरा लापता हो जाता है, ढूंढने पर भी वहाँ कहीं नहीं दीख पाता। मिथ्या श्रद्धाका गहन

अंधकार दूर होते ही इस साधकके भीतर आत्म ज्योति जगमगा जाती है जिससे आत्माको अपनी अनुभूति ( अनुभव feeling) होने लगती है। उस स्व आत्म अनुभूतिसे जीवको महान अनुपम आनन्द प्राप्त होता है यह संसारके किसी भी इष्ट भोग उपभोग पदार्थोंके अनुभवमें नहीं मिलता यह निज आत्माका आनन्द न तो कहा जा सकता है, न किसी उपमासे प्रगट किया जा सकता है। जैसे गूंगा मनुष्य किसी विषयक सुखका स्वयं अनुभव तो करता है परन्तु किसी अन्य व्यक्तिको कह नहीं सकता, ठीक वैसी ही बात आत्म अनुभवकी हो जाती है। उस आत्म-अनुभवको जैन दर्शनमें सम्यग् दर्शन कहा है।

सम्यग् दर्शन होते ही जीवकी विचारधारा तथा कार्य प्रणालीमें महान् परिवर्तन आ जाता है। उसे फिर अपने आत्माके सिवाय अन्य किसी पदार्थमें रुचि नहीं रहती। वह बाहरी पदार्थोंको छूता हुआ भी उनमें रत (लीन) नहीं होता अछूता रह जाता है। स्वादिष्ट पदार्थोंको जीभपर रखता हुआ, दांतोंसे उसे चबाता हुआ भी उसके स्वादसे अज्ञात बना रहता है। जैसे [illegible] मीमांसा करते समय [illegible] मस्तिष्कको [illegible] पड़ा हुआ कम अधिक समय मालूम नहीं होता था।

आत्म-अनुभवको सुगन्धित पदार्थोंकी सुगन्धि अपनी ओर आकर्षित नहीं करपाती उसके नेत्र सुन्दर रंगीले पदार्थोंको देखकर भी उदासीन बने रहते हैं वह सुन्दर पदार्थोंको देखकर उनमें तन्मय या मुग्ध नहीं हुआ करता उसके कान सब कुछ सुनकर भी अनसुने रहते हैं गीत, वाद्यमें इसे आनन्द अनुभव नहीं होता।

उस समय वह यदि कुछ छूना चाहता है तो संसार

विरक्त वीतरागगुरुओंके चरण छूना चाहता है यदि जीभसे कुछ कहना चाहता है तो वीतराग कथा या आत्मगुण-कथन करना चाहता है नेत्रोंसे सदा वीतराग भगवान् तथा गुरुका दर्शन करना चाहता है शास्त्र पढ़ना चाहता है। उसकी मान सिक वृत्ति संसारसे विरक्त होकर आत्माकी ओर मैं लग्न हो जाती है।

अतः वह गृहस्थाश्रममें रहता हुआ भी गृहस्थाश्रमके सब कार्य करता हुआ भी उनसे अलिप्त अछूता रहता है अतः पापपङ्कसे मलिन नहीं होता जिस तरह कीचड़में भी पड़ा हुआ सोना मैला नहीं होने पाता या जलमें रहता हुआ कमल जलसे अछूता रह जाता है। भरत चक्रवर्ती इस आत्म अनुभवके कारण षट खण्डका अधिनायक और ९६००० स्त्रियोंका पति होकर भी समस्त भोग उपभोगोंका भोग उपभोग करता हुआ भी विरक्त रहता था इसीका परिणाम यह हुआ कि दिगम्बर आत्म ध्यानमें बैठते ही उनका मोह कर्म तथा ३ य घाति कर्म क्षय होकर केवल ज्ञान हो गया।

सम्यग् दर्शन होते ही ज्ञान और आचरण जीव धारामें बह उठते हैं तब उनका नाम सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र (स्वरूपा-चरणादि) हो जाता है। ऐसा व्यक्ति अवश्य स्व-पर-आत्म संसारसे मुक्त हो जाता है। यदि कुछ समय संसारमें रहता है, तो उच्च पद पर प्रतिष्ठित जीवन व्यतीत करता है। दुर्गति, नीचकुल दरिद्रघर हीनाङ्ग अधिकाङ्ग विकल शरीर नहीं पाता, स्त्री, नपुंसक शरीर उसे नहीं मिलता सम्यग् दर्शनसे पहले नरकायु बंध कर लेनेवाला प्रथम नरकसे नीचे नहीं जाता। स्थावर, विकलत्रय तथा निम्न श्रेणीका देव नहीं होता। अतः श्रद्धा ही सबसे श्रेष्ठ सम्पत्ति है किन्तु समस्त पृथक् की होनी चाहिये॥ ॐ शान्ति ३॥

ॐ अर्हं नम

श्री प्रभु महावीर

और

पेटाभेद — विगत

|

१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-११ श्री गणधर महाराजजी

|

श्री महावीर प्रभुके प्रथम पाटधार श्री सुधर्मा स्वामिजी

|

दूसरे पाटधार श्री जम्बु स्वामीजी

पीछेके भद्रबाहु स्वामीजी म सा के बादके दोनों संप्रदायमें सरिख नाम नहीं मिलते हैं।

१ श्री दिगंबर संघ ◁———▷ २ श्री श्वेतांबर संघ

१ श्री दिगंबर संघ:

तेरा पंथ | बीस पंथ | तारण पंथ

मूल संघ | अर्वाचीन कानजीम०

पंथ काष्टासंघादि ॥ इस संप्रदायमें पंडित, ब्रह्मचारी भट्टारक क्षुल्लक ऐलक और

२ श्री श्वेतांबर संघ:

चैत्यवासी और विचरते मुनि धर्मके प्रचारक हैं ॥ दोनोंमें आचार्य उपाध्याय गणि प्रवर्तक आदि पदवियोंको धारण करनेवाले हैं।

१ चैत्यवासी स०में भी अनेक गच्छ शाखायें हैं।

आचार्य उपाध्याय मुनि आदि संघके प्रचारक हैं।

१ आचार्य उपाध्याय मुनि धर्मके यथाशक्ति पालक हैं।

२ पंडित आदि अपनी कक्षा का धर्मके पालक और रक्षक हैं।

श्वेताम्बर दिगम्बर दोनों भाई,
प्रेम करो भाई अधिक सवाई।
णमोक्कार रमतो पक्ष छोड़ दाइ,
सत्यानन्द दाता हो सदाई ॥१॥

२ विचरते मुनियोंकी भी अनेक गच्छ शाखाओं हैं।
|
मूर्ति निषेधक लोकाशाह पंथ।
|
मुंहपत्तिसे मुखबंधक पंथ।
|
मात्र दया पालक तेरा पंथ — एकही पंथ है।
स्थानकवासी सं — भिन्न भिन्न सम्प्रदाय है।

△ श्री प्रभु महावीरके सर्व अनुयायी नव तत्त्व, स्याद्वाद छ द्रव्य, पंच महाव्रत, देशव्रतादिकको मानते पालते हैं। सबका ध्येय स्थावर जीव तथा त्रस जीवोंकी दया पालनेका है। इससे सबका ध्येय संसारसे मुक्त होनेका है तो सब हम एक ही हैं भिन्नता दिखानी सो मनकी संकुचित वृत्ति है॥

—०—

## मेरी कल्पना

जो कि जैन धर्म स्वतन्त्र है तो भी उसके पर वैदिक धर्मकी छाया अधिकतर पड़ी है। जैसाकी दिगंबरमें शौच कर्मादिकका अधिकतर पालन करना और अस्पर्श स्पर्शका भेद रखना सो वैदिक सम्प्रदायकी छाप है, और श्वे० सं० में मूर्ति पर शृंगार करना कौपीन दिखानादि भी वैदिक सम्प्रदायकी

छाप है। तथापि धर्म तो उपरोक्त तप, जप त्याग वैराग्य और श्रद्धामय हैं। व्यवहार नयका आश्रय लेकर अनेक पंथ सम्प्रदायकी स्थापना हो गई। सम्प्रदायरूप वाडेमें पुरा गया प्राणी सत्यकी पवित्रताको नहीं पा सकता है। और कदाग्रही होकर जीवनको व्यर्थ कर देता है॥

आराधक आत्माओंको तो कषायोंके विजयमें पुरुषार्थ ही करना चाहिये और सब प्रपंच छोड़कर समभावमें रहना चाहिये। अत — 'समभावभावित आत्मा लहइ मोक्खं न संदेहो' जो आत्मा समभावमें रहेगा वही सुखी है और सुखी रहेगा।

यही विनम्र प्रार्थना

मुनि चरण सागर (स वागड़)

॥ दोहा ॥

लख चौरासी भटकत, मिला मनुष्य अवतार ।
चेत सके तो चेतजे, आतम कर विचार ॥१॥
महा मुश्किलसे पा लिया मानवका अवतार ।
सफल करले प्रेमसे, कर धर्म हितकार ॥२॥
क्षण भंगुर इस देहका करना क्या विश्वास ।
छुटिए जब करना हि कायाका ही विनाश ॥३॥
समय जाता है सदा, आयुष्यका विश्वास ।
राजा-रंक जीव सभी, भवमें पाए नाश ॥४॥
चढ़ती पड़ती सबकी यह दुनियाकी रीत ।
चन्द्र कला सुदिमें बढ़े वदिमें घटे प्रतीत ॥५॥
हर्ष पीछे ही होते हैं शोक दुःख अपार ।
जन्म पीछे ही जीवका मरण निश्चय धार ॥६॥

तब मनकी पीडा टले, भवका होय ज्ञान ।
सत चरणका सेवत पावे सुख निधान ॥७॥
पतित सो ही पिछानिये, पाप भय मन धार ।
सदाचार-पथमें रहे, गुण यही विचार ॥८॥
भय समका न दूजो, आदर मन पश्चात्ताप ।
पुरान कर्म क्षय करन, तप ही पथ आधार ॥९॥

ॐ अर्हं नमः

नमो पप्फाडिय-मोह-पासस्स गुण-गाहिजस्स
सिरि वद्ध माण सामिस्स ससार-पार-गामिस्स ॥

दोहा

सद्गुरु-चरण-कमल नमु सरस्वति समर मात ।
पैंतीस बोल प्रेम धरो मार्ग सूत्र विख्यात ॥१॥

१ नीतिसे धन सब हो, २ शिष्टाचार मन लाय ।
३ समकुल अन्य गोत्रसे, साथ ही विवाह होय ॥२॥
४ बचो दुराचारसे, ५ पाप कर्म भय धार ।
६ भरणे देशका चालन, उद्यम करो सुखकार ॥३॥
७ पड़ोसी प्रेमी जनो, बहुत द्वार घर बार ।
अति गुप्त अति प्रगट भी घर भला नहीं सार ॥४॥
८ सदाचारीका संग भला ९ माय ताय मन भाव ।
विनय करो मात तातका गुण यही सुख पाव ॥५॥
१० उपद्रव स्थानक त्यागकर वास बसो गुण-धार ।
११ निंदित कार्य करो नहीं गुण यह भी सुख-कार ॥६॥
१२ आमद देख खर्च करो, १३ धन अनुसार ही वेश ।
१४ (१) अष्ट गुण ही बुद्धि के १५ धर्म सुणो विशेष ॥७॥

१६ प्रथम खुराक पच्च जाय, पीछे भोजन दूसरा करो।
१७ भूख खूब लग जाय, तब भोजनका सुख धरो।८॥
१८ धर्म-अर्थ-काम साधनका, उद्यम करो निरन्तर।
१९ अतिथिका आदर करो दीन-दुःखी की सब।९॥
२० (२) अभिनिवेशसे पर रहो, २१ गुणी जनका पक्ष-कार।
२२ निषिद्ध देश काल टालना २३ शक्ति सम काय धार।१०
२४ पालन योग्यको पोषना, २५ वृद्ध जन विनय सभार।
२६ दीर्घ-दर्शी २७ (३) अधिक ज्ञान धर २८ कृतज्ञ
बनो सबकाल॥११॥
२९ लोकप्रिय ३० लज्जालुता ३१ दयालु सु स निवार।
३२ सुंदराकृति सौम्यगुण, ३३ परोपकार मन धार॥१२॥
३४ अन्तरंग शत्रु जय करो, ३५ वश करो, इन्द्रिय ग्राम
यह पैंतीस गुणको प्रेमसे वरि बनो गुण धाम॥१३॥
बाल स्वभाव चित्त लायक दाखा चीत बहु मान।
'सत्यानन्द' सम मानिको कृपा करो भगवान॥१४॥

---

(१) १ जाननेकी इच्छा॥ २ जानना॥ ३ जानकर याद रखना। ४ उसका अर्थ समझना। ५ अर्थ में शंका होना। ६ उसका समाधान करना। ७ समाधानसे निःशंक होना। ८ तत्त्व निश्चय करना सो आठ गुण बु०॥

(२) किसीको पराभव करनेकी बुद्धि रखकर अनीतिका आचरण करना नहीं (कूड कपट नहीं करना)।

(३) विशेष ज्ञानको बढ़ाना॥

---

नोट – उपरोक्त सदाचारका सामान्य आचरण हरेक स्त्री पुरुषको करना चाहिये। पीछे आत्माकी खोज करो। परमात्माको पिछानो। अब इति यही है॥

## अब दश दृष्टान्तोंसे मनुष्यभवकी दुर्लभताका दिग्दर्शन।

( इन्द्र वज्रा छन्द )

य प्राप्य दुष्प्राप्यमिदं नरत्वं
धर्मं न यत्नेन करोति मूढः ।
क्लेशप्रबन्धेन स लब्धमब्धौ
चिन्तामणि पातयति प्रमादात् ॥१॥

भावार्थ — दुर्लभ ऐसे मनुष्य भवको पाकर जो मूर्ख धर्मकी साधनामें यत्न नहीं करता है वह महान् कष्टसे प्राप्त किये हुए चिन्तामणि रत्नको आलस्यसे समुद्रमें फेंक देता है।

यहाँ पर मनुष्य भवकी दुर्लभताके विषयमें शास्त्र प्रसिद्ध दश दृष्टान्त हैं सो संक्षेपसे नीचे-नीचे दिये हैं। सो उनका विचारकर पुरुषार्थी बनो।

१-चुल्लग-भोजन विषयमें दृष्टान्त।

सब नगरोंमें श्रेष्ठ काम्पिल्य नामक नगर था। उस नगरका स्वामी ब्रह्म नामका राजा था॥ उस राजाके मनोहर रूपवाली चुल्नी नामकी रानी थी। उनको राज्य योग्य ब्रह्मदत्त नामका पुत्र था। राजाके कारणसे अकालमें मृत्यु हुई। ब्रह्मदत्त बालक था, इसलिये राजाके हो मित्राल भेजे हुए दीर्घपृष्ठ नामक राजाको उसके राज्यकी सम्हाल लेनी पड़तीथी वह चुल्नी रानीमें आसक्त हो गया था। यह बात बालक ब्रह्मदत्तने जान ली तो दीर्घपृष्ठको अपमानित करनेके लिए ब्रह्मदत्तने यह दृष्टान्त दिखलाये। जैसे कि-उत्तम नागिनके साथमें गलत नागको लाकर गोलमको और लगाकर कहाकि "हे पापी! तेरा यह नागिनीसे सम्बन्ध कैसा? दूसरेमें एक राजहंसी और एक कौआ लाकर कौवेको कहने लगाकि-हे

दीजिए! मेरे राजसिंहासन अथवा है या छोड़? नहीं छोड़िएगा तो
मुझे मार चुका, तथा चढ़कर कोठरीमें बन्द किया गया। इस बात
राज का हृदय बीच पुत्र राजा भयभीत हुआ मन्त्रीने राजासे
कहा कि 'वह राजकुमार मुझे भय लगता है इस लिये
उसका सत्कार करना चाहिये तब मन्त्रीने कहा कि-मैं उसका
विनाश करूंगा, आप निश्चिन्त रहें' यह है स्वार्थी संसार
पीछे कुमारीके लिये लाक्षागृह बनवा दिया गया। इस तरफ मंत्री
धर्मनुका मान पहले ही यह राजकी रक्षाके लिये उसने
बात बन गया। गया विवाहके लाक्षागृह तक वह सुरंग
खुदवाई। लाक्षागृहमें ही सुरंगका द्वार गुप्त रखा गया अपने
गया विवाह सुरंग द्वारपर झोंपड़ी-कुटिर बनवाकर रहने लगा
और अपने पुत्रको राजकुमारकी रक्षाके लिये साथ रहनेको कहा
और कहा कि- यह क्षणभी राजकुमारसे पृथक् मत होना क्योंकि
यह पुत्र रत्न है। इसका बहुतसे विघ्न हैं इस लिये इसके
साथ रक्षा करनी चाहिये, उसके नाशसे सबका ही नाश है।"
पिताकी शिक्षाको स्वीकार कर मंत्री पुत्र रात-दिन कुमारकी
सेवा करता है और क्षण भर भी पृथक् नहीं होता। इतनेमें
मन्त्रीने राजाने पुत्रका विवाह करके, परिणीत युगलको रहनेके
लिये लाक्षागृह दिया और अर्धरात्रिके समयमें आग लगवाई
गई। लाक्षागृह अग्निमय होने लगा। उसी समय मंत्री पुत्रने
उठकर राजकुमारको जाग्रत किया। कुमारने उठकर चारों
ओर प्रज्वलित अग्निको देखा किन्तु निडर और उत्तम पुरुष
होनेसे रंच मात्र भी भयभीत न हुआ। साहस और धैर्यकी
परीक्षा निमित्त मंत्री पुत्रने कुमारसे पूछा कि-"अब क्या होगा?"
तब कुमारने कहा कि-'जैसी भवितव्यता होगी वैसी सहाय
मिलेगा। फिर कुमारके वचनको सुनकर मंत्री पुत्रने सोचा कि
यह कुमार साहस विधान पुरुष प्रधान है इसको अवश्य कार्य
सिद्धि स्वाधीन होगा।

मत – उद्यम साहस धैर्य बल बुद्धिपराक्रमे।
षटेते यस्य विद्यन्ते तत्र देवोऽपि शंकते ?॥

अर्थ – उद्यम साहस धैर्य बल बुद्धि और पराक्रम ये छ जिसको होते हैं उससे देव भी शंका करता है (डरता है) ऐसा जानकर बुद्धिकी परीक्षाके निमित्त कुमारसे पूछा कि–"जब वनमें दावानल लगता है तब चिड़ियोंका क्या आश्रय होता है और दावानलसे कैसे मुक्त होती हैं? यह सुनकर ब्रह्मदत्तकुमारने कहा कि– चिड़ी बिलमें घुसती है तो दावानलसे छूटती है इस उत्तरको सुनकर कुमारको बुद्धिशाली जानकर मंत्रीसुतने कहा कि हम भी चिड़ियोंकी तरह बिलमें घुस जाय। फिर सुरंगका द्वार दिखाया और लात प्रहार करनेकी सूचना सुनते ही ब्रह्मदत्तने लातके प्रहारसे सुरंगद्वारको खोल दिया। फिर दोनों कुमार सुरंगमार्गसे गंगातट पर आकर धनु मंत्रीश्वरको मिले। मंत्रीश्वरने कहा कि– 'तुम दोनों देशान्तर चले जाओ यहाँ मत रहो। ऐसा सुनकर आज्ञा प्रमाण करके वे दोनों निकल गये। बहुतसे देशोंमें घूमे। बारह वर्ष तक धन और बहुत-सी स्त्रियाँ प्राप्तकर चतुरंग से य परिवेष्टित किया। जब देशाटन करते थे तब एक ब्राह्मण भी साथमें रहकर सुखदुःख सहन करता था। जब दोनोंका बिछुड़न का प्रसंग प्राप्त हुआ तब ब्रह्मदत्तने कहा कि–' जब तू ऐसा सुनेगा कि ब्रह्मदत्त काम्पिल्य नगरका राजा हुआ तब शीघ्र ही यहाँ आना और उस समय अपना मुझसे उपकार होगा ऐसा करूंगा।' ऐसा सुनकर फिर ब्राह्मण अपने स्थान पर गया। अब ब्रह्मदत्तने बहुतसे सैनिकोंसे परिवृत होकर काम्पिल्य नगरमें आकर दीर्घपृष्ठराजाका ध्वंस कर पिताके राज्यको पुन प्राप्त किया और बारह वर्ष तक चक्रवर्तित्वका राज्याभिषेक-महोत्सवका

आरंभ किया। महोत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया। इस प्रकार बारहवाँ चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त राज्यका पालन करने लगा।

उसके पास चौरासीलाख हाथी चौरासीलाख रथ, छियानवे करोड़ पायदल सेना, नव निधान चौदहरत्न चौसठ सहस्र अंतःपुर एकलाख अट्ठाईसहजार विलासिनी स्त्रियाँ, बहत्तरहजार महानगर, बत्तीसहजार देश बत्तीसहजार मुकुटबद्ध राजा पचीस लाख वाजित्र सोलह सहस्र देवता तीनलाख दासी छियानवे करोड़ ग्राम इत्यादि समृद्धि संपन्न स्वाय लिन्ड, समाभन्तूर, राजाधिराज छ खंडमें प्रसिद्ध ब्रह्मदत्त था। यह बात उस ब्राह्मणने सुनी। हर्षित होकर चक्रवर्तीसे मिलनेके लिये काम्पिल्यपुरमें आया। राजद्वार पर पहुँचने पर, पहरेदारोंने प्रवेश करने न दिया। तब ब्राह्मणने सोचा कि- जिसके साथ हम रातदिन साथमें साते बैठते थे, आज उसका दर्शन भी दुर्लभ हुआ। कैसी कर्मकी विचित्रता है! अस्तु। अब किसी युक्ति बिना चक्रवर्तीका दर्शन सुलभ नहीं है। ऐसा सोच कर एक लंबा बाँस लेकर उसपर एक पुराने जूतोंकी माला पहनाकर स्तंभकी तरह बीचमें गाड़कर बैठा। इतनेमें चक्रवर्तीकी सवारी आ रही थी। चक्रवर्तीने अनोखा ध्वजा देखकर, उसको बुलाया और ब्राह्मणको दूरसे पहचान लिया, और दुःख समयका मित्र जानकर अत्यन्त आदर सम्मान किया और अपूर्व वस्त्र पहनाकर अपने अर्धासनपर पालखीमें साथ बिठाकर स्वागतपूर्वक कुशलता पूछकर स्नानादि विधि कराकर भोजन कराया। कई दिन इस प्रकार विनोद-गोष्ठी पूर्वक बीत गये। फिर चक्रवर्तीने ब्राह्मणसे कहा कि- 'तुम मुझसे इच्छानुसार कुछ माँगो जिससे मैं आपके ऋणसे मुक्त हो जाऊँ।' तब कहा कि- मैं अपनी पत्नीसे सलाह लेकर आपसे

[illegible] हुआ" ऐसा कहकर घर पर आया और स्त्री से चक्रवर्तिकी प्रसन्नता और मांगनेकी बात कहकर क्या मांगना चाहिये यह पूछा। स्त्रीने सोचा कि-अगर देश आदि मांगनेका कहूँगी तो फिर ये मुझे छोड़कर दूसरी पत्नी लायेंगे और परिग्रहकी वृद्धि होती रहेगी, इसलिये ब्राह्मणको तो भोजन सहित दक्षिणाकी आवश्यकता है ऐसा सोचकर भोजन सहित दक्षिणाकी याचनाके लिये सलाह दी। ब्राह्मण यह सलाह लेकर चक्रवर्तिके पास गया और मांगा कि- पहले भोजन दानमें मुझको आपके यहाँ कराकर एक सोनामहोर दक्षिणामें दे और बादमें जहाँ जहाँ आपकी आज्ञा प्रवर्तती हो, उन सब देशोंमें घर घर पर भोजन और दक्षिणा मिलती रहे।" ऐसा मांगनेपर चक्रवर्तिने सोचा कि-' जिसका जितना भाग्य होता है उतना ही प्राप्त होता है।" ऐसा सोचकर ब्राह्मणका वचन स्वीकार किया और प्रथम ही अपने घर पर निमंत्रण देकर भक्ति सहित सुपाक रसवतीसे भोजन कराकर दक्षिणा देकर सन्तुष्ट किया। दूसरे दिन अन्यत्र यहाँ भोजन और दक्षिणा दी गई किन्तु चक्रवर्तिके यहाँ जिस सुपाक रसवतीका भोजन कियाथा, उस रसकी स्मृति बनी रहनेसे ब्राह्मण दम्पतिको यह अभिलाषा हुआ करतीथी कि फिर कब चक्रवर्तिके यहाँ भोजन होगा किन्तु प्रत्येक घरमें जिमते हुए इस पृथ्वी कब पूरी हो और कब सुपाक रसवति मिले? यह जैसा दुर्लभ है वैसा ही खोये हुए मनुष्य भवको पाना दुर्लभ है। यह पहला दृष्टान्त है।

### द्वितीय पासक दृष्टान्त।

पाटलिपुत्र नामका नगर था उसमें नन्द राजा राज्य करताथा। उसमें एक ब्राह्मण रहताथा। वह आवश्यक बारह व्रतोंका

कोई जान ही न सके ऐसी युक्ति करके सुवर्णमय एक थाल सभामें रख दिया और लोगोंसे कहा कि- यदि तुममेंसे कोई भी मुझे जीतले तो मैं यह थाल उसे दे दूं। यदि मैं जीता तो एक सोनामहोर लूंगा।" बहुतसे ग्राम सोनामहोरसे भरे हुए थाल रखकर लिये आये किन्तु कोई भी जीत न सका खजाना भरने लगा। इसमें एक कठियारेने भी आ जन्म तक परिश्रम करके प्राप्त हुई एक सोनामहोर हारकर दे दी अब जैसे कठियारेको मोहर प्राप्त होना दुर्लभ है। वैसी ही मनुष्य पर्याय का मिलना दुर्लभ है। यहां तक कि कठियारेको कदाचित् सोनामहोरकी प्राप्ति हो भी जाय किन्तु खोये हुए मनुष्य भवकी प्राप्ति अति दुर्लभ है।

तीसरा धान्यका दृष्टान्त।

कोई देव जम्बूद्वीपमें जितना धान्य है उस धान्यको एकत्रित करके मेरुतुल्य ऊंची राशी बनावे। उसमें एक सेर सरसोंके दानेको मिलाय जाय और सबको एकत्र मिलाया जाय कि दाना भी न देख पावे। फिर जीर्ण-शीर्ण अस्सी वर्षकी बुढ़ियाको एक सूप देकर जो सरसोंके दाने मिलाये गये हैं उनको पृथक् करनेको कहा जाय। जितना सरसोंके दाने पृथक् करना दुर्लभ है वैसा ही मनुष्य भव पाना [illegible] है॥

४

एक राजा [illegible] कहीं

यह सभा [illegible]

राजाका पुत्र

राज्य लेलूं

वही। राजाने पुत्रको बुलाकर कहा कि–" अपने कुलके अनुक्रमको जो नहीं सहन करता है वह जूआ खेलता है। जो जितता है उसको राज्य दिया जाता है।' तब पुत्रने कहाकि किस रीतिसे जीता जाता है। तब राजाने कहाकि "एक दाव तुम्हारा होता है और बाकीके दाव हमारे हाल हैं और इस प्रकार १००८ स्तंभ वालोंमें १००८ वार यदि तू जीता तो तुझे राज्य मिलेगा।' जैसा यह होना दुर्लभ है वैसा ही मनुष्य भव पाना दुर्लभ है। यदि देवकी कृपासे जीत लिया भी जाय किन्तु यह वार खोया हुआ मनुष्य भव पाना दुर्लभ है।

पांचवां रत्नका दृष्टान्त।

एक वृद्ध वणिक था। उसके पास बहुत-से रत्न थे। उस ग्राममें और भी व्यापारी थे। उन्होंने किसी महोत्सवमें कोटि ध्वज लगाये थे, किन्तु उस वृद्ध वणिकने अपने यहां कोटि ध्वज नहीं लगायेथे। एक समय कार्यवश वह विदेश गयाथा, तब उसके लड़कोंने उन रत्नोंको विदेशसे आये हुए व्यापारियोंके हाथ बेच दिये और उन्होंने भी अपने मकान पर कोटि ध्वज चढ़ाये। वे रत्न लेनेवाले व्यापारी स्वदेश चले गये। तदु पश्चात् वह वृद्ध वणिक आया। अपने यहाँ कोटि ध्वजका ढंग, और रत्नोंका बेचना हाल सुनकर, लड़कोंको उलाहना देकर जल्दीसे वे रत्न वापिस लानेके लिये कहा गया। वे सब देशोंमें घूमने लगे, किन्तु उन्होंको रत्नोंका प्राप्त होना जैसा दुर्लभ है वैसा ही मनुष्य भव भी दुर्लभ है। यदि दैव योगसे सब रत्नों मिल जाय परन्तु हारा हुआ मानव भव पाना दुर्लभ है।

छट्ठा स्वप्नका दृष्टान्त।

एक मुसाफिर अपने स्वप्नकी बात अन्य मुसाफिरोंसे कहता

वाह् आन ही न सके सभी युक्ति करके सवर्णमय एक थाल सभामें रख दिया और लोगोंसे कहा कि- यदि तुममेंसे कोई भी मुझे जीतले तो मैं यह थाल उसे दे दूं। यदि मैं जीता तो एक मोहरा लूंगा।" बहुतसे लोग मोहरोंसे भरे हुए थाल लेकर आये किन्तु कोई भी जीत न सका उल्टा हार गया। इसमें एक अतिसार भी आ जाय तब परिश्रम करके प्राप्त हुए एक मोहरा हारकर दे दी अब जैसे धनियारका महार प्राप्त होना मुल न है। वैसी ही मनुष्य पर्याय भी मिलना दुर्लभ है। यहां तक कि धनि यारेका कदाचित् सोनामहारकी प्राप्ति हो भी जाय किन्तु खोये हुए मनुष्य भवकी प्राप्ति अति दुर्लभ है।

### तीसरा धान्यका दृष्टान्त।

कोई देव जम्बूद्वीपमें जितना धान्य है उस सबको एकत्रित करके मेरुतुल्य ऊंची राशी बनाये। उसमें एक सेर सरसोंके दानेको मिलाय जाय और सबका ऐसा मिलाया जाय कि दाना भी न देख पाये। फिर जीर्ण-क्षीण अस्सी वर्षकी बुढ़ियाको एक सूप देकर जो सरसोंके दाने मिलाये गये हैं उनको पृथक् करनेको कहा जाय। जितना सरसोंके दाने पृथक् करना दुर्लभ है वैसा ही मनुष्य भव पाना दुर्लभ है॥

### चौथा धूतका दृष्टान्त।

एक राजा था। उसकी सभामें १००८ स्तम्भ थे। वहीं वह सभा करताथा। एक एक स्तम्भमें १००८ कोने थे। उस राजाका पुत्र सोचताथा कि यह राजा बुड्ढा हुआ है इसको मारकर मैं राज्य लेऊं। यह बात मंत्रीको विदित हुई और उसने राजासे

रही। राजाने पुत्रको बुलाकर कहा कि- अपने कष्टसे अनुक्रमसे जो यहाँ सहन करता है वह जुआ जीतता है। जो जीतता है उसको राज्य दिया जाता है। तब पुत्रने कहा कि किस रीतिसे जीता जाता है। तब राजाने कहा कि "एक दाव तुम्हारा होता है और बाकीके दाव हमारे होते हैं और इस प्रकार १००८ स्तंभ बारोंमें १००८ बार यदि तू जीता तो तुझे राज्य मिलेगा।' जैसा यह होना दुर्लभ है वैसा ही मनुष्य भव पाना दुर्लभ है। यदि दैवकी कृपासे जीत लिया भी जाय किन्तु एक बार खोया हुआ मनुष्य भव पाना दुर्लभ है।

पाँचवाँ रत्नका दृष्टान्त।

एक वृद्ध वणिक था। उसके पास बहुत-से रत्न थे। उस ग्राममें और भी व्यापारी थे। उन्होंने किसी महोत्सवमें कोटि ध्वज लगाये थे, किन्तु उस वृद्ध वणिकने अपने यहाँ कोटि ध्वज नहीं लगाये थे। एक समय वणिकका पुत्र विदेश गया था तब उसके लड़कोंने उन रत्नोंको विदेशसे आये हुए व्यापारियोंके हाथ बेच दिये और उन्होंने भी अपने मकान पर कोटि ध्वज चढ़ाये। वे रत्न लेनेवाले व्यापारी स्वदेश चले गये। तद् पश्चात् वह वृद्ध वणिक आया। अपने यहाँ कोटि ध्वजको देख, और रत्नोंको बेचनेका हाल सुनकर, लड़कोंको उलाहना देकर अफसोस से रत्न वापिस लानेके लिये कहा गया। वे सब देशोंमें घूमने लगे, किन्तु उन्होंको रत्नों प्राप्त होना जैसा दुर्लभ है, वैसा ही मनुष्य भव भी दुर्लभ है। यदि दैव योगसे सब रत्नों मिल जाय परन्तु हारा हुआ मानव भव पाना दुर्लभ है।

छट्ठा स्वप्नका दृष्टान्त।

एक मुसाफिर अपने स्वप्नकी बात अन्य मुसाफिरोंसे कहता

कोई जान ही न सके ऐसी युक्ति करके सुवर्णमय एक थाल सभामें रख दिया और लोगोंसे कहा कि– यदि तुममेंसे कोई भी मुझे जीत ले तो मैं यह थाल उसे दे दूं। यदि मैं जीता तो एक सोनामुहार लूँगा। " बहुतसे लोग सोनामुहारसे भरे हुए थाल लेकर खेलनेको लिये आये किन्तु कोई भी जीत न सका। तमाशा करने लगा। इसमें एक कटियारेने भी आ करके तक परिश्रम करके प्राप्त हुई एक सोनामुहार हारकर दे दी अब उस कठियारेको मुहोर प्राप्त होना दुर्लभ है। वैसी ही मनुष्य पर्याय भी मिलना दुर्लभ है। यहाँ तक कि कठियारेको कदाचित् सोनामुहोरकी प्राप्ति हो भी जाय किन्तु खोये हुए मनुष्य भवकी प्राप्ति अति दुर्लभ है।

## तीसरा धान्यका दृष्टान्त।

कोई देव जम्बूद्वीपमें जितना धान्य है उन धान्यको एकत्रित करके मेरुतुल्य उच्च राशी बनाये। उसमें एक सेर सरसोंके दानेका मिलाय जाय और सबको ऐसा मिलाया जाय कि दाना भी न देख पावे। फिर जीर्ण-शीर्ण अन्धी बुढ़ियाको एक सूप देकर जो सरसोंके दाने मिलाये गये हैं उनको पृथक करनेको कहा जाय। जितना सरसोंके दाने पृथक करना दुर्लभ है वैसा ही मनुष्य भव पाना दुर्लभ है॥

## चौथा द्यूतका दृष्टान्त।

एक राजा था। उसकी सभामें १००८ स्तम्भ थे। वहाँ वह सभा करताथा। एक एक स्तम्भमें १००८ कोने थे। उस राजाका पुत्र सोचताथा कि यह राजा बुड्ढा हुआ है, इसको मारकर मैं राज्य लेऊं। यह बात मन्त्रीको विदित हुई और उसने राजासे

रही। राजाने पुत्रको बुलाकर कहा कि—'अपने कदाग्रह अनु
भवको जो नहीं सहन करता है वह जूआ खेलता है। जो
जीतता है उसको राज्य दिया जाता है।' तब पुत्रने कहा कि
किस रीतिसे जीता जाता है। तब राजाने कहा कि "एक
दाव तुम्हारा होगा और बाकीके दाव हमारे होंगे और
इस प्रकार १००८ खम्भ कोनोंमें १००८ दाव यदि तू जीता तो
तुझे राज्य मिलेगा। जैसा यह होना दुर्लभ है वैसा ही मनुष्य
भव पाना दुर्लभ है। यदि दैवयोगसे जीत लिया भी जाय
किन्तु एक बार खोया हुआ मनुष्य भव पाना दुर्लभ है।

### पाँचवाँ रत्नका दृष्टान्त।

एक वृद्ध वणिक था। उसके पास बहुत-से रत्न थे।
उस ग्राममें और भी व्यापारी थे। उन्होंने किसी महोत्सवमें
कोटि ध्वज लगाये थे किन्तु उस वृद्ध वणिकने अपने यहाँ
कोटि ध्वज नहीं लगाये। एक समय कारणवश वह विदेश
गया था तब उसके लड़कोंने उन रत्नोंको विदेशसे आये हुए
व्यापारियोंके हाथ बेच दिये और उन्होंने भी अपने मकान पर
कोटि ध्वज चढ़ाये। वे रत्न लेनेवाले व्यापारी स्वदेश चले
गये। तद् पश्चात् वह वृद्ध वणिक आया। अपने यहाँ कोटि
ध्वजका हाल और रत्नोंका बेचनेका हाल सुनकर, लड़कोंको
उलाहना देकर जल्दीसे वे रत्न वापिस लानेके लिये कहा
गया। वे सब देशोंमें घूमने लगे, किन्तु उन्होंको रत्नोंका प्राप्त होना
जैसा दुर्लभ है वैसा ही मनुष्य भव भी दुर्लभ है। यदि दैव
योगसे सब रत्नों मिल जाय परन्तु खोया हुआ मानव भव
पाना दुर्लभ है।

### छट्ठा स्वप्नका दृष्टान्त।

एक मुसाफिर ~ उसके पास आय

हुआ कहता है कि-'मैं स्वप्नमें चन्द्रको निगल गया।' उन्होंने कहा कि-संपूर्ण चन्द्रमंडल जैसी घी चुपड़ी हुई रोटी मिलेगी और वह मिली भी सही। वहांपर दूसरे मुसाफिरने भी उसी स्वप्न को देखा था। उसने स्नान कर हाथमें पुष्प और फलादिक लेकर स्वप्नपाठकके पास जाकर स्वप्न कहा। और फलकी पृच्छा करी। स्वप्न पाठकने कहा कि-तू राजा होगा। इधर सातवें दिन राजाकी मृत्यु हुई, वह अपुत्र था। वह मुसाफिर जो राजा होनेवाला था वह थककर बैठा था। उसी समय अधिवासीत घोड़ा आया। उसने उसको देखकर हुँकार दीया और प्रदक्षिणा कि। वह मुसाफिर राजा हुआ। यह बात उस रोटी पानेवाले मुसाफिरने सुनी। उसने भी ऐसा ही स्वप्न देखा था। फकत आदेश ही भिन्न वह राजा हुआ। वह सोचता है जहां गोरस मिलताही वहां जाऊं और गोरसको पानकर सोनेसे मैं फिर भी उसी स्वप्नको देखूंगा किन्तु वह स्वप्नको नहीं देखता। वैसे ही जो एकवार मनुष्यभव पाया हुआ खोता है उसको फिर मिलना दुर्लभ है।

## मानवी चक्र के दृष्टान्त

इन्द्रपुर नामका नगर था। वहां इन्द्रदत्त नामका राजा था। उसको बाईस लड़के थे। वे भिन्न भिन्न इष्ट रानियोंसे उत्पन्न हुए थे ऐसा किसीका मत है और अन्यका कथन है कि वे एक रानीके पुत्र थे ऐसा मतान्तर है। वे सब सबके राजाको प्राण समान प्यारे थे। अन्य एक मंत्रीकी पुत्री भी राजाकी रानीथी। किन्तु उसको राजाने विवाह कालमें ही देखाथा। एक समय कभी वह अमात्य-दुहिता ऋतुस्नाता खड़ीथी। राजाने अपने सेवकोंसे पूछा कि-यह कौन है? सेवकोंने कहाकि यह तो आपकी पत्नी है तब राजा एक रात्रि उसके साथ रहा

और राजाने उसे मान रह गया। तब रानीने पत्रीन अपनी पुत्री से कहरखा था कि अब मुझे गर्भ रह तब मुझे समाचार देना। उसने धात्रीसे अपनी गर्भकी बात कही। पत्रीन कर दीन, यह मुहूर्त, राजाके साथ हुई सब बातचित एक पत्रमें लिखकर गुप्त धर रखी। नव महिने राजपर पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। उसके सौभरराजके यहां उसी दिन चार लड़के उत्पन्न हुए थे जिनके नाम अग्निक, पवन, बाहुल और सागर थे। अमात्यने उन राज पुत्रको कलाचार्यके पास कला सीखनेके लिए रखा। उसने लिखनादि गणित प्रधान सब कलाएं सिखलाई। उसी आचार्यके पास वे बाईस राजाके प्राणप्रिय लड़के भी पढ़ते थे किन्तु जब आचार्य कुछ पढ़ाता था, तब वे सबके सब अचार्यको तंग करते थे और गाली गली करते थे, इसलिये वे कला सीखने न पाये। जब आचार्य इन्हें कर मारपीट करते थे तब वे घर आकर रोते थे और घर जाकर माताओंसे कहते थे। रानियाँ आचार्यको उलाहना देतीथी और मार सुनाती और इस प्रकार सब लड़के विद्या प्राप्त न कर पाये।

इधर मथुरा नामकी नगरीमें जितशत्रु नामका राजाथा। उसकी निवृत्ति" नामकी कन्या थी। कन्याको अलंकारादि पहनाकर राजाके पास लाया गया। राजाने कहा-तुम्हारे इच्छानुसार पति पसंद करो। कन्याने कहा-जो शूरवीर पराक्रमी हो वह मेरा पति हो। राजाने कहाकि-तुम्हारे हाथमें पतिवर [illegible] राज्य दूंगा। तदनन्तर वह कन्या सैन्य और वाहन लेकर इन्द्रपुर नगरमें गई क्योंकि इन्द्रदत्त राजाके बहुत ही पुत्र थे। इन्द्रदत्त राजा सोचता है कि-मैं निश्चयसे अन्य राजाओंसे अधिक भाग्यशाली हूं, जिससे कि यह कन्या स्वयं आई है। उसने नगरको सुशोभित किया। एक रंगमंडप

और एक चक्र लगवाया। थंभेपर आठ आरेवाले आठ चक्र थे उसपर एक पुतली बनवाई थी। पुतलीकी आँख नीचे रखे हुए तैलपात्रमें पड़ी हुई छायाको देखकर बींधी जायगी। इन्द्रदत्त राजा सन्नद्ध होकर पुत्रोंके साथ रंगमंडपमें आया। वह कन्या भी सर्व अलंकारादिसे विभूषित होकर एक स्थान पर आकर पासमें बैठी। सब सभा जब भर गई तब राजाने बड़े श्रीमाली नामवाले पुत्रसे कहा कि "हे पुत्र, यह कन्या और राज्य ग्रहण करना है इस लिये इस पुतलीका वेध डालो।" उसने धनुर्वेदका पूरा अभ्यास ही नहीं किया था जिससे धनुष्यको ग्रहण करनेमें भी अशक्त था। फिर जैसे तैसे धनुष्यका ग्रहण किया। कहीं भी बाण जाय ऐसा करके धनुष्यसे बाण छोड़ा। वह बाण चक्रमें आकर टूट गया। इस प्रकार किसीके बाणने एक चक्रको उल्लंघन किया। किसीके दो और बहुतोंके तो बाण चक्रके बाहर ही निकल गये। तब राजाको बहुत दुःख हुआ कि इन लड़कोंने मुझे लज्जित किया। तब मंत्रीने कहा 'क्यों दुःख करते हो?' राजाने कहा 'इन लड़कोंने मुझे अपमानित किया। मंत्रीने कहा 'आपका मेरी पुत्रीसे उत्पन्न हुआ लड़का भी तो है। जिसका नाम सुरेन्द्रदत्त है और वह धनुर्वेदमें समर्थ भी है।' उसका सब अभिज्ञान भी कह दिये तब राजाने कहा 'हे मंत्री, वह कहाँ है?' मंत्रीने दिखाया तब राजाने उससे कहा कि "तुम यह आठ चक्रोंको भेदन कर पुतलीकी आँखको बींधकर राज्य और निर्वृत्ति कन्याको प्राप्त करोगे क्या?" तब कुमारने "जैसी आपकी आज्ञा" ऐसा कहकर यथास्थान स्थित होकर धनुष्यका ग्रहण किया। दो मनुष्य दोनों ओर नंगी तलवार लेकर खड़े हैं और कहते हैं कि "अगर लक्ष्य चूक गये तो तुम्हारा सिर काटा जायगा" और आचार्य भी पासमें खड़े रहकर भय दिखलाते हैं, 'यदि स्खलित हो गया तो मारा जायगा" ये बाईस कुमार भी विरोध

रूपमें चित्त करते थे। इतने सबकी आँखें आँखों पर पर
यद्यपि अन्तरका जानकर, रूपमें दृष्टि लगाकर एकचित्त होकर
पुतलीकी बाईं आँख वेध डाली। लोगोंमें हर्षनाद हुआ। जैसा
यह राधा वेध करना दुर्लभ है वैसा ही मनुष्य भव भी दुर्लभ है॥

## आठवाँ चर्म का दृष्टान्त।

एक हजार योजन विस्तारवाला पानीका द्रह था।
जो चमसे आच्छादित था। उसके मध्यमें एक छिद्र था जिसमें
कच्छपकी गर्दन आ सकती थी। उसमें कच्छप सौ वर्ष बीतने
पर ग्रीवाको बाहर निकालता था। उसने एक समय जब
ग्रीवाको निकाला उतनेमें उसको प्रकाश दीखा। चाँदनीमें पुष्प
और फलों का भी देखा। वह गया भीतर द्रहमें पश्चात् उसके मनमें
विचार आया कि मैं अपने स्वजनोंको भी यह प्रकाश पुष्पादि
का दर्शन कराऊं। स्वजनोंको ला कर चारों ओर घूमता है
किन्तु वह छिद्र मिलताही नहीं है। यदि दैव योगसे मिल
भी जाय किन्तु जाया हुआ मनुष्यभव दुर्लभ है।

## नौवाँ युग का दृष्टान्त।

पूर्व समुद्रमें युगको डाला जाय और पश्चिम समुद्रमें
समीला डाली जाय, वह युगके छिद्रमें समीलाका प्रवेश जैसा
दुर्लभ है वैसाही मनुष्यभव दुर्लभ है। यदि कदाचित् प्रचण्ड
वायुकी लहरोंसे प्रेरित होकर समीलाका प्रवेश छिद्रमें दैव
योगसे [illegible] जाय किन्तु मनुष्य भवका पाना अति दुर्लभ है॥

## दसवाँ परमाणुका दृष्टान्त।

ो एक देवने उसका
थ म
गिरिके शिखर पर जाकर

और एक खंभा लगवाया। खंभेपर आठ आरेवाले आठ चक्र थे उसपर एक पुतली बनवाई थी। पुतलीकी आँख नीचे रखे हुए तैलपात्रमें पड़ी हुई छायाको देखकर बींधी जायगी। इंद्रदत्त राजा सन्नद्ध होकर पुत्रोंके साथ रंगमंडपमें आया। वह कन्या भी सर्व अलंकारादिसे विभूषित होकर एक स्थान पर आकर पासमें बैठी। सब सभा जब भर गई तब राजाने बड़े श्रीमाली नामवाले पुत्रसे कहा कि 'हे पुत्र, यह कन्या और राज्य ग्रहण करना है इस लिये इस पुतलीको बींध डालो।" उसने धनुर्वेदका पूरा अभ्यास ही नहीं किया था, जिससे धनुष्यको ग्रहण करनेमें भी असमर्थ था। फिर जैसे तैसे धनुष्यका ग्रहण किया। कहीं भी बाण जाय ऐसा सोचकर धनुष्यसे बाण छोड़ा। वह बाण खंभेमें आकर टूट गया। इस प्रकार कितनेक कुमारोंने एक चक्रका उल्लंघन किया। कितने दो और बहुतोंने तो सब चक्र बाहर ही निकल गये। तब राजाको बहुत दुःख हुआ कि इन लड़कोंने मुझे लज्जित किया। तब मंत्रीने कहा "क्यों दुःख करते हो?" राजाने कहा 'इन लड़कोंने मुझे अपमानित किया।' मंत्रीने कहा 'आपका मेरी पुत्रीसे उत्पन्न हुआ लड़का भी तो है। जिसका नाम सुरेन्द्रदत्त है और वह धनुर्वेदमें समर्थ भी है।' इसका सब अभिज्ञान भी कह दिये तब राजाने कहा 'हे मंत्री, वह कहाँ है।' मंत्रीने दिखाया तब राजाने उससे कहा कि 'तुम यह आठ चक्रोंका भेदन कर पुतलीकी आँखको बींधकर राज्य और निवृत्ति कन्याको प्राप्त करते हो क्या?' तब कुमारने 'जैसी आपकी आज्ञा' ऐसा कहकर यथास्थान स्थित होकर धनुष्यका ग्रहण किया। दो मनुष्य दोनों ओर नंगी तलवार लेकर खड़े हैं और कहते हैं कि 'अगर लक्ष्य चूक गए तो तुम्हारा सिर कट जायगा' और आचार्य भी पासमें खड़े रहकर भय दिखलाते हैं, 'यदि स्खलित हो गया तो मारा जायगा' वे बाईस कुमार भी विघ्न

एक छिद्र करते थे। उसने सबकी ओरसे आँखें फेर कर
ओंठ करता तानकर हृदयमें रति स्थिरकर एकचित्त होकर
तीसरी वार आँख वेध डाली। लोगों में हर्षनाद हुआ। जैसा
राधावेध भेदन करना दुर्लभ है, वैसा ही मनुष्य भव भी दुर्लभ है॥

## आठवाँ चर्म का दृष्टान्त।

एक लक्षसहस्र योजन विस्तारवाला पानीका द्रह था।
जो सघन आच्छादित था। उसके मध्यमें एक छिद्र था जिसमें
कछुवेकी गरदन आ सकतीथी। उसमें कच्छप सौ वर्ष पीछे गर्दन
बाहर निकालता था। उसने एक समय जब
गर्दन निकाली उसने उसमें प्रकाश देखा। चांदनीमें पुष्प
और फलों को भी देखा। वह गया भीतर द्रहमें क्योंकि उसके मनमें
विचार आया कि मैं अपने स्वजनोंको भी यह प्रकाश पुष्पादि
दर्शन कराऊं। स्वजनोंको ला कर चारों ओर घूमता है
किन्तु वह छिद्र मिलताही नहीं है। यदि दैव योगसे मिल
भी जाय किन्तु खोया हुआ मनुष्यभव दुर्लभ है।

## नौवाँ युग का दृष्टान्त।

पूर्व समुद्रमें युगका धुरा डाल और पश्चिम समुद्रमें
समोल डाल जाय, वह युगके छिद्रमें समीलाका प्रवेश जैसा
दुर्लभ है वैसाही मनुष्यभव दुर्लभ है। यदि कदाचित् प्रचण्ड
वायु द्वारा प्रेरित होकर समीलाका प्रवेश छिद्रमें दैव
योगसे हो जाय किन्तु मनुष्य भवका पाना अति दुर्लभ है॥

## दसवाँ परमाणु का दृष्टान्त।

एक बड़ा स्तम्भ, एक देवने उसका चूर्णकर एक नलि
में डाल कर मेरुके शिखर पर जाकर उस चूर्णको

जोरसे फूंक मारकर चारों दिशामें उड़ा दिया गया। अनः स्थभव पुद्गल परमाणुको अकत्रित करना जैसा मुश्कल मानो दैवयोगसे होभी जाये तो भी मनुष्य पर्याय मिल अति मुश्कल है॥

यह दश दृष्टान्तसे मनुष्य पर्यायकी दुर्लभता बताई अब विशिष्ट पुष्टि के लिये शास्त्रकार फरमाते हैं कि—

( शिखरिणी छन्द )

अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभवं,
न धर्म य कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलित।
बुडन् पारावारे प्रवरमपहाय प्रवहणं,
स मुख्यो मूर्खाणामुपलमुपलब्धु प्रयतते ॥१॥

अर्थ– यह नहीं पार पाया जाय ऐसा संसारमें कष्टसे मनुष्यभव प्राप्त कर जो मनुष्य विषय सुखकी तृष्णामें आसक्त भया हुआ आत्मचिंतवन जिनेन्द्र पूजा, वन्दन, जिनवाणीका श्रवण स्वाध्याय, संयम, तप, दानादि धर्मको नहीं करता है तो वह धर्मरूप जल्दी तराणेवाला जहाजको छोडकर मूर्ख शिरोमणि विषयाशक्तिरूप पत्थरको गलेमें लगाकर इस संसाररूप समुद्रमें डुबता है या भ्रमण करता है।

इति मनुष्य भवकी दुर्लभतापर १० दृष्टान्त समाप्त



महा-मंत्र नमस्कार।

(१) नमो अरिहंताण । नमो सिद्धाण ।
नमो आयरियाण । नमो उवज्झायाण ।
नमो लोए सव्वसाहूण ।
एसो पंच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाण च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलम् ॥१॥

卐

(२) मंगल सूत्र

चत्तारि मंगल-अरिहंता मंगल । सिद्धा मंगल । साहू मंगल
केवली पन्नत्तो धम्मो मंगल ॥१॥

चत्तारि लोग उत्तमा-अरिहंतालोग उत्तमा । सिद्धा लोग उत्तमा ।
साहू लोग उत्तमा । केवली पन्नत्तो धम्मा लोग उत्तमो ॥२॥

चत्तारिसरण पवज्जामि-अरिहंता सरण पवज्जामि । सिद्धा
सरण पवज्जामि । साहू सरण पवज्जामि । केवलीप न
त्त धम्म सरण पवज्जामि ॥३॥

(३) पंचिंदिय-गुरु गुण संख्या सूत्र

पंचिंदिय संवरणो तह नव विह बंभचेर गुत्तिधरो ।
चउविह कसाय मुक्को इअ अट्ठारस गुणेहिं संजुत्तो ॥१॥
पंच महव्वय जुत्तो, पंच-विहायार पालण समत्थो ।
पंच समिओ तिगुत्तो, छत्तीस गुणो गुरु मज्झ ॥२॥

(४) खमासमण-प्रणिपात सूत्र । ( पचांग नमस्कार )

इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए, निसीहिआए
मत्थएण वंदामि ।

(५) सद्गुरुकी शाता पृच्छा सूत्र।

इच्छकार, सुहराइ, सुह देवसि। सुख तप, शरीर-निराबाध,॥ सुख संजम यात्रा-निर्वहाओजी स्वामी शाता छे जी॥ भात-पाणिका लाभ देनाजी॥

(उत्तर- जैसा वर्तमान।)

(६) अब्भुट्ठिओ (गुरु क्षमापना) सूत्र

इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! अब्भुट्ठिओमि, अब्भिंतर देवसिअं, खामेउं? इच्छं, खामेमि देवसिअं जंकिंचि अपत्तिअं परपत्तिअं भत्ते पाणे, विणए वेयावच्चे, आलावे, संलावे, उच्चासणे, समासणे अंतरभासाए उवरिभासाए, जंकिंचि मज्झ विणय-परिहीणं, सुहुमं वा, बायरं वा तुब्भे जाणह, अहं न जाणामि, तस्समिच्छामि दुक्कडं ॥१॥

(७) इरिया वहिय-गमनागमन प्रतिक्रमण सूत्र।

इच्छा कारेण संदिसह भगवन् इरियावहियं पडिक्कमामि? ॥ इच्छं इच्छामि पडिक्कमिउं ॥१॥ इरियावहियाए, विराहणाए ॥२॥ गमणागमणे ॥३॥ पाणक्कमणे बीयक्कमणे, हरियक्कमणे ओसा उत्तिंग, पणग-दग-मट्टीमक्कडा संताणा संकमणे ॥४॥ जे मे जीवा विराहिया ॥५॥ एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिआ, चउरिंदिया पंचिंदिया, ॥६॥ अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया संघट्टिया परियाविया किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं, संकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥७॥

(८) तस्स उत्तरी-दोष-प्रतिकार सूत्र।

तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं पावाणं, कम्माणं, निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं ॥८॥

(९) अन्नत्थ ऊससिएणं कायोत्सर्गेऽपवाद स्खलना सूत्र।

अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं छीएणं जंभाइएणं, उड्डुएणं, वाय-निसग्गेणं, भमलिए-पित्तमुच्छाए ॥१॥ सुहुमेहिं, अंग संचालेहिं सुहुमेहिं खेल संचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठि संचालेहिं ॥२॥ एवमाइएहिं, आगारेहिं अभग्गो, अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो ॥३॥ जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, नमुक्कारेणं न पारेमि ॥४॥ ताव कायं ठाणेणं, मोणेणं झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि ॥५॥

(१०) लोगस्स-नामस्तव सूत्र।

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं चउवीसंपि केवली ॥१॥
उसभमजिअं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल सिज्जंसवासुपुज्जं च।
विमलमणंतं च जिणं धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च।
वंदामि रिट्ठनेमिं पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥
एवं मए अभिथुआ, विहुय रयमला पहीण जरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥
कित्तिय वंदिय-महिया जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्ग-बोहिलाभं समाहिवर-मुत्तमं दिंतु ॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

(११) करेमि भंते-सामायिक प्रत्याख्यान सूत्र।

करेमि भंते! सामाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि। जाव

नियम, पज्जुवासामि, दुविहं, तिविहेणं मणेणं, वायाए, काएणं न करेमि, न कारवेमि, तस्स भंते पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ॥

(१२) सामाइय वयजुत्ता–सामायिक परिपूर्ण उत्थान सूत्र ।

सामाइय वय जुत्तो, जाव मणे होइ नियम संजुत्तो ।
छिन्नइ असुहं कम्मं सामाइय जत्तिआ वारा ॥१
सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा ।
एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥२॥

भाषा सूत्र

सामायिक विधिसे लिया विधिसे पारा, विधि करते हुए, अविधि हो, उन सबका मन वचन कायासे मिच्छामि दुक्कड' ॥ दस मनके, दस वचनके, बारह कायाके, यह बत्री दोषोंमेंसे कुछ भी दोष लगा हो उन सबका 'मिच्छामि दुक्कडं" ॥

(१३) चैत्य-वंदन सूत्र

चैत्य वंदन करते हुए आदिमें बोलनेका श्लोक ।

सकल कुशल वल्लि पुष्करावर्त मेघो,
दुरिततिमिर-भानु कल्पवृक्षोपमान ।
भवजलनिधिपोत, सर्व संपत्ति हेतु,
सभवतु सतत व श्रेयसे शांति नाथ ॥१॥

तुझ मूर्तिने निरखवा मुझ नयणा तरसे ।
तुम गुणगणने बोलवा, रसना मुझ हरखे ॥१॥
काया अति आनन्द मुझ, तुम युग पद फरसे ।
तो सेवक तार्या विना, कहो ? कम हव सरसे ॥२॥
एम जाणीने साहिबाए, नेक नजरथी हे जोय ।
ज्ञान विमल प्रभु नजरथी, ते शुं जे नवि होय ॥३॥

(१४) जंकिंचि-सूत्र तीर्थ और जिनबिंबों को वन्दना सूत्र।

जंकिंचि नाम तित्थं, सग्गे पायालि माणुसे लोए।
जाइं जिणबिंबाइं, ताइं सव्वाइं वंदामि ॥१॥

(१५) नमुत्थुणं (शक्रस्तव) सूत्र

नमुत्थुणं, अरिहंताणं भगवंताणं ॥१॥
आइगराणं, तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं ॥२॥

रिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुंडरीआणं, पुरिसवर
गंधहत्थीणं ॥३॥ लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहिआणं, लोगपईवाणं
लोगपज्जोअगराणं ॥४॥ अभयदयाणं, चक्खुदयाणं,
मग्गदयाणं सरणदयाणं, बोहिदयाणं ॥५॥ धम्मदयाणं
धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवरचाउरंत
चक्क-वट्टीणं ॥६॥ अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं, विअट्ट
छउमाणं ॥७॥ जिणाणं, जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं
बुद्धाणं, बोहयाणं मुत्ताणं मोअगाणं ॥८॥ सव्वन्नूणं सव्व
दरिसीणं, सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति
सिद्धिगइ नाम धेयं, ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं जिअ
भयाणं ॥९॥ जे अ अईआ सिद्धा, जे अ भविस्संति णागए काले।
संपइ अ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि ॥१०॥

(१६) जावंति चेइआइं-सूत्र

जावंति चेइआइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअलोए अ।
सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ॥१॥

(१७) जावंत केवि साहू-सूत्र

जावंत केवि साहू, भरहेरवय महाविदेहे अ।
सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेण तिदंड विरयाणं ॥१॥

(१८) पञ्चपरमेष्ठी नमस्कार सूत्र ।

नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्य ॥१॥

(१९) श्री जिनेन्द्र स्तवन ।

मदल समता सुरलतानो नु ही अनुपम कंद रे ।
[illegible] ही कृपारस कनक कुंभो, तु ही जिणंद मुणिंदरे ।
प्रभु तुहि तुहि तुहि तुहि, तुहि धरता ध्यानरे- (ए चाल)॥१॥
तुझ स्वरूपी जे थया तणे लह्यु रहारु स्थान रे ।
प्रभु तुहि तुंहि तुहि तुंहि तुहि धरता ध्यानरे। प्रभु० ॥२॥
तुही अल्गा भव थकी पण, भाविक रहारे नामरे ।
पार पाम त भवना पह अचरिज ठामरे ॥प्रभु० ॥३॥
जन्म पावन आज म्हारा निरखिओ तुझ नुररे ।
भवाभव अनुमोदनाजो हुआ आप हजुररे ॥ प्रभु० ॥४॥
एह मार अभय आतमा असंख्यात प्रदेशरे ।
म्हारा छे गुण अनन्ता किम कहुं तास नियेपरे ॥ प्रभु० ॥५॥
एक एक प्रदेश रहारे, गुण अनन्तनो धामरे ।
तम करता तुझ सहज मिलत, होत ज्ञान प्रकाशरे ॥ प्रभु० ।६॥
ध्यान-ध्याता-ध्येय पद, एकी भाव होय एमरे ।
तेम करता सेव्य सेवक, भाव होत तस खेमरे ॥ प्रभु० ॥७॥
शुद्ध सेवा रहारी जे, होत अचल स्वभावरे ।
ज्ञान विमल सूरीद प्रभुता, होत सुजस जमावरे ॥ प्रभु० ॥८॥

(२०) उवसग्ग हर-श्री पार्श्वनाथजी स्तवन ।

उवसग्गहर पास पास, वंदामि कम्म-घण-मुक्कं ।
विसहर-विस-निन्नासं, मंगल-कल्लाण-आवासं ॥१॥
विसहर-फुलिंग-मंतं कंठे धारेइ जो सया मणुओ ।
तस्सगह-रोग-मारी, दुट्ठ-जरा जंति उवसामं ॥२॥

चिट्ठउ दूरे मंता, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ ।
नर-तिरियसु वि जीवा, पावंति न दुक्ख-दोगच्च ॥३॥
तुह सम्मत्ते लद्धे, चिंतामणि कप्पपायव ब्भहिए ।
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं ॥४॥
इअ संथुओ महायस भत्तिब्भर निब्भरेण हियएण ।
ता देव दिज्ज बोहिं, भव भव पास जिणचंद ॥५॥

(२१) जय वीयराय—प्रार्थना सूत्र ।

जय वीयराय जगगुरु होउ मम तुह पभावओ भयवं ।
भव निव्वेओ मग्गा-णुसारिआ इट्ठफल सिद्धि ॥१॥
लोगविरुद्धच्चाओ गुरुजण पूआ परत्थ करणं च ।
सुहगुरुजोगो तव्वयण सेवणा आभवमखंडा ॥२॥
वारिज्जइ जइवि नियाण-बंधणं वीयराय तुह समये ।
तह वि मम हुज्ज सेवा, भव भव तुम्ह चलणाणं ॥३॥
दुक्खक्खओ कम्मक्खओ समाहिमरणं च बोहिलाभो अ ।
संपज्जउ मह एअं, तुह नाह पणाम करणेणं ॥४॥
सर्व मंगल मांगल्यं सर्व कल्याण कारणम् ।
प्रधानं सर्व धर्माणां जैनं जयति शासनम् ॥५॥

(२२) अरिहंत चेइआणं—जिन बिंबाग्रे कायोत्सर्ग करण सूत्र ।

अरिहंत चेइआणं करेमि काउस्सग्गं ॥१॥ वंदण वत्तिआए पूअण वत्तिआए, सक्कार वत्तिआए, सम्माण वत्तिआए, बोहिलाभ वत्तिआए निरुवसग्ग वत्तिआए ॥२॥ सद्धाए मेहाए, धिइए, धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं ॥३॥

(२३) पंच कल्याणक स्तुति ।

गर्भ जन्मनि दीक्षायां, कैवल्ये निवृत्तौ तथा ।
यस्येन्द्रा महिमा चक्रु स्तं जिनं नौमि भक्तितः ॥१॥

## श्री जिनेन्द्र-द्रव्य पूजन विधि ।

प्रथम गर्म हुआ पवित्र पानीसे स्नानकर शरीरको लुंछकर, धूपे हुए पवित्र वस्त्र पहनकर, अपने कपालमें तिलकादि करकर पीछे प्रभुजीको मयूर पीछीसे प्रमार्जन कर, जीवजतु की रक्षा कर, पचामृत (दुध दहि, मिश्री, पानी, घी) से प्रक्षाल करना चाहिये। पीछे अंग लुंछन तीन करना चाहिय। पाट लुंछन पिछे करकर धूप जलाना चाहिय। फिर केसर चंदनादिसे अंग पूजा करनी चाहिये। फिर पुष्प पूजा पीछे बहार आकर स्वस्तिकसे अक्षत पूजा मिठाइ धरनेसे नैवद्य पूजा, फल धरनेसे फल पूजा दीपक धरनेसे दीपक पूजादि अष्ट प्रकारकी पूजा की जाति है। मंदिरमें प्रवेशात निसीही ३ कहनी चाहिये जिनसे आरम्भकी कहनी चाहिय द्रव्य पूजामें नियुक्त होकर भाव पूजामें प्रवेश करना चाहिये।

### भाव पूजन विधि

प्रथम चार नवकार सूत्र बोलकर जिनेन्द्रको पचांग नमस्कार कर पीछे सातवां आठवां नौवां सूत्र बोलकर चार नमस्कारका कायोत्सर्ग करना, पीछे दशवां सूत्र प्रगट कहना पीछे चौथा सूत्रसे तीन बार पचाग नमस्कार कर चैत्य वंदन करना सा १३-१४-१५-१६-१७-१८-१९-२०-२१-२२ और नौवां सूत्र बोलकर एक नमस्कारका काउसग्ग करना पीछे पारकर प्रगट २३ वा स्तुति सूत्र कहना। फिर पचाग नमस्कार चौथा सूत्रसे करना ॥ समाप्त ॥

---

नोट-यह सूत्र सब कंठस्थ करलेना चाहिये। प्रभुजी सामने स्तुति करते समय पुरुष वर्ग दाहिनी ओर स्त्री वर्ग बाई ओर खडे रहकर स्तुति करनी चाहिय।

॥ श्री जिनके अंग पूजा करते समय बोलनेका दुहा ॥

जल भरी संपुट पत्रमें, युगलिक नर पूजंत ।
ऋषभ चरण अंगुठमें दायक भवजल अंत ॥१॥
(प्रभुके दाहिना और बांया अंगुठ पर तिलक करना)
जानु बले काउस्सग्ग रह्या, विचर्या देश विदेश ।
खडा खडा केवल लह्यु, पूजो जानु जिनेश ॥२॥
( प्रभुके दोनो ढींचणमें तिलक करना । )
लोकांतिक वचने करी, वरस्या वरसी दान ।
करकांडे प्रभु पूजना पूजो भवी बहुमान ॥३॥
( प्रभुके दोनो कांडे पर तिलक करना । )
मान गयुं दोय अंशथी देखी वीर्य अनन्त ।
भुजा बले भव जल तर्या पूजो खंध महन्त ॥४॥
( प्रभुके दोनो खभेपर तिलक करना । )
सिद्ध शिला गुण उजली, लोकान्ते भगवन्त ।
वसिया तिणे कारण भवि शिरशिखा पूजंत ॥५॥
( प्रभुके शिखा स्थानमें तिलक करना । )
तीर्थंकर पद पुण्यथी त्रिभुवन जन सेवंत ।
त्रिभुवन तिलक समा प्रभु भाल तिलक जयवंत ॥६॥
( प्रभुके कपालमें तिलक करना । )
सोल पहोर प्रभु देशना, कंठ विवर वर्तुल ।
मधुर ध्वनि सुरनर सुणे, तिण गले तिलक अमूल ॥७॥
( प्रभुजीके कंठमें तिलक करना । )
हृदय कमल उपशम बले बाल्या राग ने रोष ।
हिम दहे वन गहन, हृदय तिलक संतोष ॥८॥
( प्रभुजीके हृदयमें तिलक करना । )

रत्नत्रयी गुण उजली, सकल सुगुण विश्राम ।
नाभि कमलनी पूजना, करता अविचल धाम ।९।।
( प्रभुजीने नाभिमें तिलक करना )
उपदेशक नव तत्त्वना, तिणे नव अंग जिणंद ।
पूजो बहु विध भावथी कहे शुभवीर मुणिंद ।१०।।

**श्री अष्ट प्रकारकी पूजाके दोहा ।**

(१) जल पूजा ।

जल पूजा जुगते करो, मल अनादि विनाश ।
जल पूजा फल मुज होजो मागु एम प्रभु पास ।।१।।

(२) चन्दन पूजा ।

शीतल गुण जेहमां रह्यो शीतल प्रभु मुख रंग ।
आत्म शीतल करवा भणी पूजो अरिहा अंग ।।२।

(३) पुष्प पूजा ।

सुरभि अखंड कुसुम ग्रही, पूजो गत संताप ।
सुम जंतु भव्यज परे, करी ए समकित छाप ।।३।।

(४) धूप पूजा ।

ध्यान-घटा प्रगटावीए वाम नयन जिन धूप ।
मिच्छत्त दुर्गंध दूरे टले, प्रगटे आत्म स्वरूप ।।४।।

(५) दीप पूजा ।

द्रव्य दीप सुविवेकथी, करता दुःख होय फोक ।
भाव-प्रदीप प्रगट हुवे, भासित लोकालोक ।।५।।

(६) अक्षत पूजा ।

शुद्ध अखंड अक्षत ग्रही नंद्यावर्त्त विशाल ।
पुरी प्रभु सन्मुख रहो, टालो सकल जंजाल ।६।।

(७) नैवेद्य पूजा।

अणाहारी पद मैं कर्यो विग्गह गइअ अनन्त।
दूर करी ते दीजीए अणाहारी शिवसंत ॥७॥

(८) फल पूजा।

इन्द्रादिक पूजा भणी फल लाय धरी राग।
पुरुषोत्तम पूजा करी मांग शिव फल *त्याग ॥८॥

श्री सुगुरु वन्दन विधि।

प्रथम गुरु जीको देखते ही दोनो हाथ जोड़ कर 'मत्थएण वंदामि' कहना। पीछे चौथा सूत्र बोलते ही दो वक्त पचांग नमस्कार करना, पीछे खड़े खड़े पांचवां सूत्रका उच्चारण करना पीछे पचांग नमस्कर छट्ठा सूत्रका पाठ बोलना फिर चौथा सूत्र बोलकर पचांग नमस्कार करके प्रत्याख्यान करना हाथ जोड़ करना॥

सामायिक विधि।

१ शुद्ध वस्त्र २ आसन ३ मुहपत्ति, ४ रजोहरण (चरवला) ५ मापड़ा (ठवणी) ६ पुस्तक ७ नद्दी ८ माला यह सामायिक योग्य उपकरण हैं।

प्रथम शुद्ध वस्त्र पहनकर ऊंचे आसन पर पुस्तककी स्थापना करनी स्थापना करते समय दक्षिण हस्तसे आह्वान मुद्रासे पहेला और तीसरा सूत्र पढ़कर स्थापना स्थापनी। पीछे चौथा सूत्र पढ़कर पचांग नमस्कर सातवाँ इरियावहि सूत्र तथा ८ वा नौवा सूत्र कहकर चार नमस्कार मनमें काउस्सग्ग करना। अथवा दसवाँ सूत्र 'चंदेसुनिम्मलयरा' तक चिंतवन करना फिर प्रगट 'नमो अरिहंताणं' कहकर दसवाँ सूत्र पढ़ना। अब चौथा सूत्रसे पंचांग नमस्कर

*मोहद्दशा

कारण संदिसह भगवन् ! सामायिक मुहपत्ति पडिलेहुं ! इच्छं " कहकर मुहपत्ति पडिलेहनी। पीछे फिर खमा सूत्र बोलकर पचांग नमाकर ' इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक संदिसाहु ? ' 'गु॰ क॰ संदिसह।' इच्छं ' फिर ४ खमा पूर्ववत् कहकर इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक ठाऊं ? गु॰ क॰ ठाओ। ' इच्छं " कहकर दो हाथ जोडकर नमस्कार मंत्र ३ गीनना, पीछे ' इच्छाकारी भगवन् पसायकरी सामायिक दंडक उच्चारणाजी " फिर खडे या गुरु हाथ ता करेमि भंत पाठ पढे न होतो अपने स्वयं ११ सूत्र पढना। पीछे पूर्ववत् खमासमण सूत्र कहकर इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! बेसणे संदिसाहुं ? गु॰ क॰ संदिसह। इच्छं ख॰ 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! बेसणे ठाऊँ ?' गुरु कथन ठाओ' इच्छं ' ख॰ इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सज्झाय संदिसाहु ? 'गुरु कथन संदिसह' 'इच्छं ' ख॰ इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सज्झाय करूं' गु॰ क॰ करो ''इच्छं ' पीछे तीन बार हाथ जोडकर नमस्कार मंत्र गीने। पीछे ध्यान व माला गीने या पुस्तक पढे व पढाय धर्मविलास स्वाध्याय करे। दो घडी ४८ मिनिट तक सामायिकमें स्थिर रहै॥

## सामायिक पारनेकी विधि।

प्रथम ४ ख॰ सूत्र कहकर पीछे सातवां आठवां नौवा आदि सूत्र कहकर पूर्ववत् दशवां सूत्र तककी क्रिया करे पीछे ख॰ 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! मुहपत्ति पडि लेहु ? 'गु॰ कथन पडिलेहो' इच्छं पीछे मुहपत्ति पडिलेहनी। फिर ख॰ देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सामायिक पारुं ' गु॰क॰ पुनरपि कर्तव्य '' अथवा 'पुणो वि कायव्व शि॰ क॰ यथा शक्ति। पीछे ख॰ 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक पार्यु ? गु॰क॰' आयारो न मोत्तव्वो।' अथवा ' आयारो न

नोट - जहां जहां इच्छं ' पद आय वहां गुरुजीके आदेशकी प्रतीक्षा करनी चाहिए।

सामग्या ।'शि०'श०' सहित पीछे आसन पर अपना दक्षिण हाथ स्थापकर नमस्कार अत्र तथा बाग्हवीं सूत्र सम्पूर्ण बोलना पाठ सिद्धा पश्चात् उत्थाय नमस्कार प्रथम (बोलकर) स्थापना उठालेनी। इस विधि सामायिक करनेवाला श्रावकादि कर्मकी निर्जरा और पुण्यके भागी होते हैं। श्रावक सामायिकमें रहता हुआ श्रमण तुल्य शोभा पाता है।

श्वेताम्बर आम्नाय अनुसार ग्यारे श्रावककी प्रतिमाका संक्षिप्त वर्णन।

१ दर्शन प्र० २ व्रत प्र० ३ सामायिक प्र० ४ पौषधोपवास प्र० ५ देश ब्रह्मचर्य प्र० ६ ब्रह्मचर्य प्र० ७ सचित्त त्याग प्र० ८ आरम्भ त्याग प्र० ९ अनुमति त्याग प्र० १० जितना मान उतना वहीं खालीका उठनेका त्याग प्र० ११ श्रमण भूत प्र० ॥

१ दर्शन प्रतिमा धारक श्रावकको श्री जिनवरमें श्रद्धा होनी चाहिये। [illegible] द्रव्यादिका गुण पर्याय ज्ञाता हो। हेय-त्याज्य, ज्ञेय-जानने योग्य उपादेय-आचरण योग्य भावोंका सतत स्मरण करता रहे। सम संवेग निर्वेद अनुकम्पा आस्तिक्यादि गुणोंका धारक हो। अर्हत पूजा गुरु सेवा, स्वाध्याय, दानादिक करनेमें रत हो। इतने गुण सहित श्रावक एक दिनकी अथवा एक महिनेकी यावत् उत्कृष्ट जीवन पर्यंत प्रतिमा धारण कर सकता है।

२ व्रत प्र०-पांच अणुव्रत-अहिंसा सत्य, अचौर्य स्वस्त्री-सन्तोष परिग्रह-परिमाण ॥ तीन गुण व्रत दिग परिमाण, भोगोपभोग वस्तुका परिमाण, अनर्थ दण्डका त्याग ॥ अतिथि संविभाग यह भी व्रतको धारण करता हुआ प्रथम के गुण सहित श्रावक दो दिन अथवा दो महिना या तो उत्कृष्ट जीवन पर्यंत प्रतिमा धारण करता रह सकता है ॥

३ सामायिक प्र० त्रिकाल या तो पक्ष सतत दो घडीकी सामायिक दिनमें नित्य करे शेष उपरोक्त तीन दिन या तीन महिना या तो उ० जीवन्त पर्यंत आराधे ॥

४ पौषधोपवास प्र० चार आहारका त्याग करे उपवास करे। अथवा गरम जलको छूट रखकर उपवास करे, अथवा आयंबील या एकासना करकर भी चार दिन व चार महिना या तो यावज्जीव पर्यंत उपरोक्त गुण सहित चौथी प्रतिमाको आराधे।

५ देश ब्रह्मचर्य प्र०-दिनमें मैथुन न सेवे, रात्रिमें मैथुनका परिमाण करे स्नानका त्याग करे, कौपीन न लगाय कच्छ न लगाय पांच दिन व पांच महिना यातो यावत० उपरोक्त गु० ॥

६ ब्रह्मचर्य प्र० तीन योग और पक्ष करणसे ब्रह्मचर्य पाले। छ दिन० छ महिना व यावज्जी० शेष उपरोक्त गुणका धारक हो ॥

७ सचित्त त्याग प्र० खाने पीनेमें सजीव वस्तु न ले वापरनेमें यतनासे वापर सात दिन व सात महिना या तो यावज्जीव शेष उपरोक्त ॥

८ स्वय आरंभ त्याग प्र० स्वयं आरंभ स्वय न करे पूजन आदि शुभ कार्यमें यतनासे करे। आठ दिन व आठ महिना यावत० शेष उपरोक्त ॥

९ अनुमति त्याग प्र० संसारके कोईभी कार्यमें अनुमति न देवे। काल परमाण नौ दिन, नौ महिना, या यावज्जी० शेष उपरोक्त॥

१० प्रश्नोत्तर सिवाय सब व्यापार त्याग प्र० काल मान दस दिन व दस महिना यावत यावज्जी० आप उपरोक्त सिवाय सिर मुंडन कराय व शिखाका पक्षत रखे ॥

११ श्रमणभूत प्र० मुंडन कराकर अथवा लोच कराकर श्रमणके उपकरण धारण कर अथवा साध्वाचार योग्य विभूषा रखकर घरका त्याग करे। आहारके दोष का त्याग, अष्ट प्रवचन माताका पालन करे, करण सित्तरी चरणसित्तरी आदि गुणाके आचरणका अभ्यास करे कोइ पूछे तो मैं श्रमणोपासक ऐसा कहै व ग्यारवी प्रतिमाधारी हूं ॥

---

नोट- जघन्य आराधकको ६६ दिन लगे तार आराधना करनी चाहिये। मध्यम आराधकको ६६ महिने लगे तार आराधना करनि चाहिये। उत्कृष्ट आराधकका यावज्जीव पर्यंत अंतिम प्रतिमाकी आराधना करता हुआ अंतमें संलेखना करे। समाधि मरणसे देह त्याग ॥

१ पहली प्रतिमासे लेकर अपनी शक्ति अनुसार जितनी प्रतिमा धारण कर उसको जीवन पर्यंत पालन कर सकता है। जघन्य मध्यम प्रतिमाधारी बीचमें त्याग दे तो उसीका फिरसे-पहेलेसे आरंभ करना चाहिये ॥

२ यह प्रतिमाधारी मार्गानुसारी गुणोके भी धारक होना चाहिये।

३ गुरु आज्ञा तथा षडावश्यादिक करनी भी करता हुआ मुनि होनेकी उत्कंठा रखे ॥

४ प्रतिमा धारक श्रावकने पहेलेहि मधु, (मध) मांस मदिराका तथा अभक्ष्य वस्तुओंका त्याग करनाही ठीक है। सातवी प्रतिमामें कंदमूलका अवश्य त्याग करना चाहिये, पहेलेसे ही त्याग होय तो बहुत सुंदर बात है ॥

५ इस विधिकी प्रवृत्ति प्राय आज नहीं है किन्तु जाननेके लिये लिखि है आराधना करने योग्य है निषेध नहीं है। विधानकी विशेषता गुरुदेवसे जाना ॥

यह विधि शास्त्र अवलोकनमे लिखि गई है क्षति होवे तो मेरी है सज्जन महाशय सुधारकर पढे और आराधे॥

ॐ शान्ति ३

॥ दूसरा प्रकार ॥

श्रावक योग्य ग्यारे प्रतिमाका वर्णन

ग्यारे प्रतिमाके नाम तथा संक्षिप्त शब्दार्थकी स्पष्टता

१ दर्शन प्रतिमा व समकित प्रतिमा। २ व्रत प्रतिमा। ३ सामायिक प्रतिमा। ४ पौषध प्रतिमा। ५ कायोत्सर्ग प्रतिमा। [अभिग्रह विशेष रूप] ६ मैथुन त्याग प्रतिमा। ७ सचित्त त्याग प्रतिमा। ८ स्वयं आरंभ त्याग प्रतिमा। ९ आदेशाऽऽरंभ त्याग प्रतिमा। १० अपने लिये बनाया गया भोजन आदि त्याग प्रतिमा। ११ श्रमण भूत-मुनि समान प्रतिमा॥

प्रतिमा शब्दका शब्दार्थ यह है कि अभिग्रह या नियम विशेष जानना॥

अब अनुक्रमसे सबही प्रतिमाका विस्तारसे वर्णन किया जायगा॥ उक्त प्रतिमाओंके काल प्रमाण प्रतिमाओंकी संख्याके साथ महिनाओंका हैं, जैसा कि पहलीका एक मास दूसरीका दो मास आदि॥

१ दर्शन प्रतिमा-सम संवेग-निर्वेद अनुकम्पा और आस्तिकता गुण युक्त तथा कदाग्रह और वीतरागके उपदेशमें शङ्कादि

दोष रहित और दोष रहित समकितकों यथा शक्ति यथा स्थित एक मास पालनेमें आवे उस प्रथम दर्शन प्रतिमा कही जाती है।

२ व्रत प्रतिमा–श्रावक योग्य ५ अणुव्रत ३ गुण व्रत ४ शिक्षा व्रत यह बारा व्रत निरतिचारसे उपरोक्त दर्शन प्रतिमाके गुण सहित दो मास तक धारण कीई जाती है॥

३ सामायिक प्रतिमा–मन–वाणी–कायाके पाप व्यापारोंको रोककर और दोष रहित धर्मध्यान रूप व्यापारमें स्थिर होकर प्रात और सामको दो दफे तीन मास पर्यंत सामायिक उपरोक्त गुण सहित करनी सामायिक प्रतिमा है।

४ पौषध प्रतिमा–उपरोक्त गुण सहित हरयेक अष्टमी चतुर्दशी प्रमुख पर्वदिनोंमें सर्वथा चार आहारके त्याग, शरीर सत्कारका त्याग पाप व्यापारका त्याग मैथुनका त्याग ऐसे निर्दोष पौषध चार मास पर्यंत करना सो॥

५ कायोत्सर्ग प्रतिमा–उपरोक्त गुण सहित पौषधोपवास करकर समशानमें व शून्यागारमें व कोई भय स्थानमें निर्भय होकर काया सर्व मुद्रामें ध्यानस्थ रात्रिमें पांच मास पर्यंत रहना॥

६ ब्रह्मचर्य प्रतिमा–शणगार कथा स्नान विलेपन, प्रमुख विभूषाको त्यागता और स्त्री कथा व स्त्रीके साथ एकांतमें राग सहित बातचीत करनेका त्याग छ मास पर्यंत ब्रह्मचर्य सो॥

७ सचित्त त्याग प्रतिमा सजीव भोजन पानी आदिका सात मास पर्यंत त्यागना और उपर उपरकी प्रतिमाकों भी

इस विधिकी प्रवृत्ति प्राय आज नहीं है किन्तु जाननेके लिये लिखि है आराधना करने योग्य है निषेध नहीं है। विधानकी विशेषता गुरुदेवसे जाना ॥

यह विधि शास्त्र अवलोकनसे लिखि गई है क्षति होवे तो मेरी है सज्जन महाशय सुधारकर पढे और आराध॥

ॐ शांति ३

॥ दूसरा प्रकार ॥

श्रावक योग्य ग्यारे प्रतिमाका वर्णन

ग्यारे प्रतिमाके नाम तथा सक्षिप्त शब्दार्थकी स्पष्टता

१ दर्शन प्रतिमा व समकित प्रतिमा । २ व्रत प्रतिमा। ३ सामायिक प्रतिमा। ४ पौषध प्रतिमा। ५ कायोत्सर्ग प्रतिमा। [अभिग्रह विशेष रूप] ६ मैथुन त्याग प्रतिमा। ७ सचित्त त्याग प्रतिमा। ८ स्वय आरभ त्याग प्रतिमा। ९ आदेशाऽऽरंभ त्याग प्रतिमा। १० अपने लिये बनाया गया भोजन आदि त्याग प्रतिमा। ११ श्रमण भूत-मुनि समान प्रतिमा ॥

प्रतिमा शब्दका शब्दार्थ यह है कि अभिग्रह या नियम विशेष जानना॥

अब अनुक्रमसे सबही प्रतिमाका विस्तारसे वर्णन किया जायगा॥ उक्त प्रतिमाओंके काल प्रमाण प्रतिमाओंकी सख्याके साथ महिनाओंका है, जैसा कि पहलीका एक मास दूसरीका दो मास आदि ॥

१ दर्शन प्रतिमा-सम सवेग-निर्वेद अनुकम्पा और आस्तिकता गुण युक्त तथा कदाग्रह और वीतरागके उपदेशमें शकादि

दोष रहित और दोष रहित समकितको यथा शक्ति यथा स्थित एक मास पालनेमें आवे उसे प्रथम दर्शन प्रतिमा कही जाती है।

२ व्रत प्रतिमा-श्रावक योग्य ५ अणुव्रत ३ गुण व्रत ४ शिक्षा व्रत यह बारा व्रत निरतिचारसे उपरोक्त दर्शन प्रतिमाके गुण सहित दो मास तक धारण की जाती है॥

३ सामायिक प्रतिमा-मन-वाणी-कायाके पाप व्यापारोंको रोककर और दोष रहित धर्मध्यान रूप व्यापारमें स्थिर होकर प्रात और सायको दो वक्त तीन मास पर्यंत सामायिक उपरोक्त गुण सहित करनी सामायिक प्रतिमा है।

४ पौषध प्रतिमा-उपरोक्त गुण सहित हरमास अष्टमी चतुर्दशी प्रमुख पर्वदिनोंमें समग्र चार आहारका त्याग, शरीर सत्कारका त्याग पाप व्यापारका त्याग मैथुनका त्याग ऐसे निर्दोष पौषध चार मास पर्यंत करना सो॥

५ कायोत्सर्ग प्रतिमा-उपरोक्त गुण सहित पौषधोपवास करकर समशानमें व शून्यागारमें व कोई भय स्थानमें निर्भय बनकर कायोत्सर्ग मुद्रामें ध्यानस्थ रात्रिमें पांच मास पर्यंत रहना सो॥

६ ब्रह्मचर्य प्रतिमा-शृंगार कथा, स्नान विलेपन, प्रमुख विभूषाका त्यागना और स्त्री कथा व स्त्रीके साथ एकान्तमें राग सहित बातचीत करनेका त्याग छ मास पर्यंत ब्रह्मचर्य सो॥

७ सचित्त त्याग प्रतिमा सजीव भोजन पानी आदिका सात मास पर्यंत त्यागना और उपर उपरकी प्रतिमाकी भी पालना सो॥

८ स्वयं आरंभ त्याग प्रतिमा–उपरोक्त गुण सहित आठ मास पर्यंत अपने आरंभ समारंभ नहीं करना सो ॥

९ अन्यसे–दूसरेसे आरंभ त्याग प्रतिमा–उपरोक्त गुण सहित नौ मास पर्यंत दूसरसे भी आरंभ समारंभ करानेका त्याग सो ॥

१० स्व निमित्त आहारादि त्याग प्रतिमा–उपरोक्त गुण सहित दश मास पर्यंत अपने लिये बनाये गये आहार पानीका त्याग करे और शिखा रखकर मुंडन कराये व सर्वथा मुंडन कराय सो ॥

११ श्रमणभूत प्रतिमा–उपरोक्त गुण सहित मुंडन कराकर वा केस लुंच कर रजोहरण तथा पात्रादि मुनि लिंग धारण कर दोष रहित आहार पानी ग्रहण करता हुआ जग जग विचरे कोई प्रश्न करे तो कहे कि मैं श्रमणोपासक ग्यारवी प्रतिमाधारी हूँ यह प्रतिमा ग्यारा मास वा जीवन पर्यंत रखे सो ॥

॥ मतान्तर ॥

आवश्यक चूर्णीकारने ५ प्र० रात्रिभोजन त्याग बताई है तथा ६ प्र० सचित्त त्यागरूप है । ७ प्र० दिवसको ब्रह्मचर्य पालना और रात्रिका नियम कहा है । ८ प्र० सर्वथा ब्रह्मचर्य पालन है । ९ प्र० प्रेष्य आरंभ त्याग है बाकी पूर्ववत् ॥

---

नोट —प्रतिमाका पालन करना आवश्यक है । कमजोर बनना सो कायरता है । अगर दाव लगने मुश्किल है तो भी कुछ मास करेंगे ॥



## श्री जैन दिगम्बर और श्वेताम्बर शास्त्रका
## मागधि भाषामें कुछ
## पद्य और गद्य

'तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाण संप्राप्ति ॥ दि०

अर्थ– हे 'जिनेन्द्र देव' आपके पवित्र चरण कमल जब तक मुझे मोक्षकी प्राप्ति न हो तब तक मेरे हृदय मन्दिरमें विराजमान रहो और मेरा हृदय आपके चरणकमलोंमें लीन रहे।

लोग विरुद्धच्चाओ, गुरुजणपूआ परत्थ करणं च ।
सुहगुरु जोगो तव्वयण, सेवणा आभवमखंडा ॥ श्वे० ॥

अर्थ–हे जिनेन्द्र! जब तक मैं इस संसारमें हूं तब तक मुझे लोक विरुद्ध प्रवृत्तिका त्याग हो और गुरुजनोंकी विनय पूजा करता रहूँ तथा परोपकार करता रहूं और सद्गुरुओंका समागम मीलता रहे, तथा भव स्थिति पर्यन्त अखंड आपके प्रवचनकी सेवना करूं।

'वारिज्जइ जइवि नियाण-बंधण वीयराय तुह समए।
तहवि मम हुज्ज सेवा, भव भव तुम्ह चलणाणं ॥ श्वे०

अर्थ–हे वीतरागदेव! आपके प्रवचनमें यद्यपि निदान करनेकी मनाई है तथापि भवोभवमें आपके चरण कमलकी सेवा मुझे प्राप्त हो ॥

दुक्खखओ कम्मखओ, बोहिलाहो सुगइ गमणं ।
सम्मं समाहिमरणं, जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं ॥ दिग० ॥

अर्थ-हे भगवन्! मेरे दुःखोंके नाश हो कर्मोंका नाश हो, रत्न त्रयीकी प्राप्ति हो, सुगतिमें गमन हो, सम्यग् दर्शनकी प्राप्ति हो, समाधि मरण हो और श्री जिनराजके गुणोंकी प्राप्ति हो ऐसी मेरी भावना है।

'दुक्ख क्खओ कम्म क्खओ समाहिमरणं च बोहिलाओ अ।
संपज्जउ मह एअं, तुह नाह पणाम करणेणं ॥ श्वे ॥

अर्थ- हे नाथ! आपको प्रणाम करनेसे मेरा दुःखका नाश हो, कर्मोंका नाश हो, और समाधि पूर्वक मरण हो तथा रत्न त्रयकी प्राप्ति हो।

'खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्व भूदेसु वैरं मज्झं ण कणवि ॥ दि० ॥

अर्थ- मैं समस्त जीवों पर क्षमा करता हूं। और मुझे भी सर्व जीव क्षमा दें। मेरी समस्त जीव मात्रमें मैत्री है। मेरे किसीके साथ वैर नहीं है।

खामेमि सव्व-जीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ति मे सव्व भूएसु वेरं मज्झ न केणई ॥ श्वे० ॥

अर्थ- एक ही है ॥

दिगम्बर श्रावक दिगम्बर मुनिओंकी नवधा भक्ति
नीचे लिखे मुजब कर तेहैं।

१ प्रतिग्रह-अत्र तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ कहकर खड़े रखे। २ ऊँचे स्थान पर खड़े रखे। ३ पैर प्रक्षालन करे। ४ पूजा करे। ५ नमस्कार करे ६ ७-८ मन वचन कायाको शुद्ध रखे। ९ भोजन दोष रहित शुद्ध करावे ॥

## दाताके गुण।

१ दान देनेकी श्रद्धा होनी चाहिये। २ मुनिराज पर अनुराग होना चाहिये। ४ दान देने योग्य पदार्थकी शुद्धि होनी चाहिये। ५ दाताको फलकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। ६ अक्रोधी हो। ७ शक्तियुक्त हो॥

## अथ श्री श्रीधर्मजिन स्तुति

नम श्री धर्म निष्कर्माद्युदयाय महितायत।
मर्त्यामरेन्द्रनागेन्द्रैर्दिव्यायमहितायते ॥१॥
श्रीयाज्जिनौघो ध्यानताप्त ततान समानया।
भामण्डलस्थिया य स ततानलसमानया ॥२॥
भारति प्राग्जिनेन्द्राणां नयनी रक्षतादिक।
संसाराम्भो निधावस्मानवनी रक्षतादिक ॥३॥
पविंस्था य श्रियाश्चलितकरा सामान्याश्रिता।
प्रशास्तिन्नलनाम्भोजकरालाभा सर्वथिता ॥४॥

इति श्री धर्म जिनस्तुति।

## अथ श्री वीरजिनस्तुति

वीर देव नित्यं वन्दे जैन पादा।
जैन वाक्य भूयाद्भूये

इति श्री वीरजिनस्तुति

# शास्त्र-स्वाध्याय का मंगलाचरण

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः ॥१॥
अविरलशब्दघनौघ प्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का ।
मुनिभिरुपासिततीर्था, सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

॥ श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं धर्मसम्बन्धकं, भव्य-जीवमनःप्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री ' ~ नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्री-गणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य श्री आचार्येण विरचितं, श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ।

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी
मङ्गलं Aकुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥१॥
सर्वमङ्गल-माङ्गल्यं सर्वकल्याण-कारकम्
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ॥२॥

---

Aस्थुलिमग्राणं